22

संसद
(Parliament)

संसद, केंद्र सरकार का विधायी अंग है। संसदीय प्रणाली, जिसे सरकार का 'वेस्टमिंस्टर माडल'[1] भी कहते हैं, अपनाने के कारण भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसद एक विशिष्ट व केंद्रीय स्थान रखती है।

संविधान के पांचवें भाग के अंतर्गत अनुच्छेद 79 से 122 में संसद के गठन, संरचना, अवधि, अधिकारियों, प्रक्रिया, विशेषाधिकार व शक्ति आदि के बारे में वर्णन किया गया है।

संसद का गठन

संविधान के अनुसार भारत की संसद के तीन अंग हैं—राष्ट्रपति, लोकसभा व राज्यसभा। 1954 में राज्य परिषद एवं जनता का सदन के स्थान पर क्रमश: राज्यसभा एवं लोकसभा शब्द को अपनाया गया। राज्यसभा, उच्च सदन कहलाता है (दूसरा चैंबर या बड़ों की सभा) जबकि लोकसभा निचला सदन (पहला चैंबर या चर्चित सभा) कहलाता है। राज्यसभा में राज्य व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं, जबकि लोकसभा संपूर्ण रूप में भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है।

हालांकि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है और न ही वह संसद में बैठता है लेकिन राष्ट्रपति, संसद का अभिन्न अंग है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक तब तक विधि नहीं बनता, जब तक राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति नहीं दे देता। राष्ट्रपति, संसद के कुछ चुनिंदा कार्य भी करता है। उदाहरण स्वरूप-राष्ट्रपति दोनों सदनों का सत्र आहूत करता है या सत्रावसान करता है, लोकसभा को विघटित कर सकता है, जब संसद का सत्र न चल रहा हो, वह अध्यादेश जारी कर सकता है आदि।

इस मामले में भारतीय संविधान, अमेरीका के स्थान पर ब्रिटेन की पद्धति पर आधारित है। ब्रिटेन की संसद ताज (राजा या रानी), हाउस ऑफ़ लॉर्ड (ऊपरी सदन) व हाउस ऑफ कॉमन्स (निचला सदन) से मिलकर बनती है। इसके विपरीत, अमेरिकी राष्ट्रपति विधानमंडल का महत्वपूर्ण अंग नहीं है। अमेरिका में विधानमंडल को 'कांग्रेस' के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस के अंतर्गत 'सीनेट' (ऊपरी सदन) हाउस ऑफ़ रिप्रेजेंटिव (निचला सदन) होते हैं।

सरकार की संसदीय पद्धति में विधायी व कार्यकारी अंगों में परस्पर निर्भरता पर जोर दिया जाता है। अत: हमारे यहां संसद में राष्ट्रपति, ब्रिटेन की संसद में ताज की तरह है। वहीं दूसरी तरह, राष्ट्रपति पद्धति वाली सरकार में विधायी और कार्यकारी अंगों को अलग करने पर जोर दिया जाता है। इसीलिए अमेरिकी राष्ट्रपति, कांग्रेस का घटक नहीं माना जाता है।

दोनों सदनों की संरचना

राज्यसभा की संरचना

राज्यसभा की अधिकतम संख्या 250 निर्धारित है। इनमें में 238 सदस्य राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि (अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित) होंगे, जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाएंगे।

वर्तमान में राज्यसभा में **245** सदस्य हैं। इनमें 229 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 4 संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं और 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत हैं।

संविधान की चौथी अनुसूची में राज्यसभा के लिए राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों में सीटों के आवंटन का वर्णन किया गया है।[2]

1. **राज्यों का प्रतिनिधित्वः** राज्यसभा में राज्यों के प्रतिनिधि का निर्वाचन राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य करते हैं। चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। राज्यसभा के लिए राज्यों की सीटों का बंटवारा उनकी जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। इसलिए राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या अलग-अलग राज्यों में अलग होती है। उदाहरण स्वरूप-उत्तर प्रदेश से 31 सदस्य हैं जबकि त्रिपुरा से 1 सदस्य है। अमेरिका में 'सीनेट' में राज्यों का प्रतिनिधित्व बराबर होता है (जनसंख्या के आधार पर नहीं)। हालांकि अमेरिका में, जनसंख्या के स्थान पर सभी राज्यों को सीनेट में समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। अमेरिकी सीनेट में कुल 100 सीटें हैं तथा प्रत्येक राज्य को 2 सीटें प्राप्त हैं।
2. **संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्वः** राज्यसभा में संघ राज्य क्षेत्र का प्रत्येक प्रतिनिधि इस कार्य के लिये निर्मित एक निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। यह चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। 7 संघ राज्य क्षेत्रों में से सिर्फ 2 (दिल्ली व पुडुचेरी) के प्रतिनिधि राज्यसभा में हैं। अन्य पांच संघ शासित प्रदेशों की जनसंख्या तुलनात्मक रूप से काफी कम होने के कारण राज्यसभा में उन्हें अलग प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है।
3. **नामित या नाम निर्देशित सदस्यः** राष्ट्रपति, राज्यसभा में 12 ऐसे सदस्यों को नामित या नाम निर्देशित करता है, जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा, विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो। ऐसे व्यक्तियों को नामांकित करने के पीछे उद्देश्य है कि नामी या प्रसिद्ध व्यक्ति बिना चुनाव के राज्यसभा में जा सकें। यहां यह ध्यान देने वाली बात है कि अमेरिकी सीनेट में कोई नामित सदस्य नहीं होता है।

लोकसभा की संरचना

लोकसभा की अधिकतम संख्या 552 निर्धारित की गई है। इनमें से 530 राज्यों के प्रतिनिधि, 20 संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं। एंग्लो-इंडियन समुदाय[3] के दो सदस्यों को राष्ट्रपति नामित या नाम निर्देशित करता है।

वर्तमान में लोकसभा में 545 सदस्य हैं। इनमें से 530 सदस्य राज्यों से, 13 सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों से और दो सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामित या नाम निर्देशित एंग्लो-इंडियन समुदाय से हैं।[4]

1. **राज्यों का प्रतिनिधित्वः** लोकसभा में राज्यों के प्रतिनिधि राज्यों के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। भारत के हर नागरिक को जिसकी उम्र 18 वर्ष से अधिक है और जिसे संविधान या विधि के उपबंधों के मुताबिक अयोग्य नहीं ठहराया गया हो, मत देने का अधिकार है। 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 द्वारा मत देने की आयु सीमा को 21 वर्ष से घटकर 18 वर्ष कर दिया।
2. **संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्वः** संविधान ने संसद को संघ राज्यक्षेत्रों के प्रतिनिधियों को चुनने की विधि के निर्धारण का अधिकार दिया है। इसी के तहत संसद ने संघ राज्य क्षेत्र अधिनियम 1965 बनाया, जिसके तहत संघ राज्य क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन के तहत लोकसभा के सदस्य चुने जाते हैं।
3. **नामित या नाम निर्देशित सदस्यः** अगर एंग्लो-इंडियन समुदाय का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, तो राष्ट्रपति इस समुदाय के दो लोगों को नामित या उनका नाम निर्देशित कर सकता है। शुरुआत में यह उपबंध 1960 तक के लिए थी लेकिन 95वें संविधान संशोधन अधिनियम 2009 में इस उपबंध को 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

लोकसभा की चुनाव प्रणाली

लोकसभा चुनाव प्रणाली से संबंधित विभिन्न पहलू इस प्रकार हैं:

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र

लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन कराने के लिए सभी राज्यों को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। इस संबंध में संविधान ने दो उपबंध बनाए हैं:

1. लोकसभा में सीटों का आवंटन प्रत्येक राज्य को ऐसी रीति से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथा साध्य एक ही हो। यह उपबंध उन राज्यों पर लागू नहीं होता जिनकी जनसंख्या 60 लाख से कम है।
2. प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में यथा साध्य एक ही हो।

संक्षेप में, संविधान सुनिश्चित करता है कि (क) राज्यों के बीच (ख) उस राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों के बीच, प्रतिनिधित्व में एकरूपता हो।

'जनसंख्या' से आशय अंतिम जनसंख्या की गणना से है जिसके सुसंगत आंकड़े प्रकाशित हो गए हैं।

प्रत्येक जनगणना के पश्चात पुनः समायोजन

प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर पुन: समायोजन किया जाता है: (अ) राज्यों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन और (ब) प्रत्येक राज्य का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन। संसद को यह अधिकार है कि वह इसके लिए प्राधिकार और रीति का निर्धारण करे। इसी के तहत, संसद ने 1952, 1962, 1972 व 2002 में परिसीमन आयोग अधिनियम लागू किए।

42वें संशोधन अधिनियम 1976 में राज्यों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन और प्रत्येक राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन को वर्ष 2000 तक स्थिर कर दिया गया (1971 की जनगणना के आधार पर)। इस प्रतिबंध को 84वें संशोधन अधिनियम 2001 में अगले 25 वर्षों (यानी वर्ष 2026 तक) के लिए बढ़ा दिया गया।

84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 में सरकार को यह शक्ति दी गई कि वह 1991 की जनगणना की जनसंख्या के आधार पर राज्य के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का पुन: समायोजन एवं संयुक्तिकरण कर सकती है। बाद में 87वें संशोधन अधिनियम 2003 में निर्वाचन क्षेत्र का परिसीमन 2001 की जनगणना के आधार पर करने के लिए कहा गया न कि 1991 की जनगणना के आधार पर। हालांकि इस तरह के बदलाव राज्यों को लोकसभा में स्थानों के आवंटन की संख्या को बिना बदले किए जाते हैं।

अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण

हालांकि संविधान में किसी धर्म विशेष की प्रतिनिधित्व पद्धति का त्याग किया है, लेकिन जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए लोकसभा में सीटें आरक्षित की गई हैं।[5]

प्रारंभ में यह आरक्षण 10 वर्षों के लिए किया गया था (1960 तक)। इसके बाद इसे हर 10 वर्ष बाद 10 वर्ष तक के लिए बढ़ा दिया गया। 95वें संशोधन अधिनियम, 2009, में इस आरक्षण को 2020 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

हालांकि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित की गई हैं लेकिन उनका निर्वाचन, निर्वाचन क्षेत्र के सभी मतदाताओं द्वारा किया जाता है। अनुसूचित जाति व जनजाति के सदस्यों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से भी चुनाव लड़ने का अधिकार है।

84वें संशोधन अधिनियम, 2001 में आरक्षित सीटों को 1991 की जनगणना के आधार पर पुन: नियत किया गया (सामान्य सीटों की तरह)। 87वें संशोधन अधिनियम 2003 में आरक्षित सीटों को 1991 की बजाए 2001 की जनगणना के आधार पर पुनः नियत किया गया।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व न अपनाना

हालांकि, संविधान में राज्यसभा के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अपनाई गई लेकिन इस प्रणाली को लोकसभा में नहीं अपनाया गया। इसकी जगह, प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के जरिए लोकसभा के सदस्यों को निर्वाचित करने को आधार बनाया गया।

प्रादेशिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अंतर्गत, विधानमंडल का

प्रत्येक सदस्य एक भूभागीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे निर्वाचन क्षेत्र कहा जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता है। अत: ऐसे निर्वाचन क्षेत्र को एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र कहते हैं। इस पद्धति के तहत, जिस प्रत्याशी को अधिक मत प्राप्त होते हैं, उसे विजयी घोषित किया जाता है। प्रतिनिधित्व की सामान्य बहुमत पद्धति का यह प्रतिनिधित्व पूरी चुनाव प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व नहीं करता। दूसरे शब्दों में, यह अल्पसंख्यकों (छोटे समूहों) के प्रतिनिधित्व को सुरक्षित नहीं करता।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का उद्देश्य क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व विभेद को हटाना है। इस व्यवस्था के तहत लोगों के सभी वर्गों को अपनी संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिलता है। यहां तक कि सबसे छोटी जनसंख्या वाले वर्ग को भी विधानमंडल से इसका हिस्सा मिलता है।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व के दो प्रकार हैं, जिनके नाम हैं- एकल हस्तांतरणीय मत व्यवस्था एवं सूची व्यवस्था। भारत में, राज्यसभा, राज्य विधानपरिषदों, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये पहले प्रकार की व्यवस्था को अपनाया गया है।

यद्यपि संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने लोकसभा सदस्यों के चुनाव के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की वकालत की थी लेकिन इसे संविधान में दो कारणों से नहीं अपनाया गया:

1. मतदाताओं के लिए मतदान प्रक्रिया (जो कि जटिल है) समझने में कठिनाई, क्योंकि देश में शैक्षणिक स्तर कम है।
2. बहुदलीय व्यवस्था के कारण संसद की अस्थिरता।

इसके अलावा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के निम्नलिखित दोष हैं:

1. यह काफी खर्चीली व्यवस्था है।
2. यह उप-चुनाव का कोई अवसर प्रदान नहीं करती।
3. यह मतदाताओं एवं प्रतिनिधियों के बीच आत्मीयता को कम करती है।
4. यह अल्पसंख्यक एवं सामूहिक हितों को बढ़ावा देती है।
5. यह पार्टी व्यवस्था के महत्व को बढ़ावा देती है एवं मतदाताओं के महत्व को कम करती है।

दोनों सदनों की अवधि

राज्यसभा की अवधि

राज्यसभा (पहली बार 1952 में स्थापित) निरंतर चलने वाली संस्था है। यानी, यह एक स्थायी संस्था है और इसका विघटन नहीं होता किंतु इसके एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष सेवानिवृत्त होते हैं। ये सीटें चुनाव के द्वारा फिर भरी जाती हैं और राष्ट्रपति द्वारा हर तीसरे वर्ष के शुरुआत में मनोचयन होता है। सेवा निवृत्त होने वाले सदस्य कितनी बार भी चुनाव लड़ सकते हैं और नामित हो सकते हैं।

संविधान ने राज्यसभा के सदस्यों के लिए पदावधि निर्धारित नहीं की थी, इसे संसद पर छोड़ दिया गया था। इसी के तहत, जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) के आधार पर संसद ने कहा कि राज्यसभा के सदस्यों की पदावधि छह साल की होनी चाहिए। इस अधिनियम ने भारत के राष्ट्रपति को पहली राज्यसभा में चुने गए सदस्यों की पदावधि कम करने का अधिकार दिया। पहले बैच में यह तय हुआ कि लॉटरी के आधार पर सदस्यों को सेवानिवृत्त किया जाए। इसके अलावा, इस अधिनियम द्वारा राष्ट्रपति को राज्यसभा के सदस्यों की सेवानिवृत्ति के आदेश को शासित करने वाले उपबंध बनाने का अधिकार भी दिया गया।[6]

लोकसभा की अवधि

राज्यसभा से अलग, लोकसभा जारी रहने वाली संस्था नहीं है। सामान्य तौर पर इसकी अवधि आम चुनाव के बाद हुई पहली बैठक से पांच वर्ष के लिए होती है, इसके बाद यह खुद विघटित हो जाती है। हालांकि राष्ट्रपति को पांच साल से पहले किसी भी समय इसे विघटित करने का अधिकार है। इसके खिलाफ न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

इसके अलावा लोकसभा की अवधि आपात की स्थिति में एक बार में एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है।[7] लेकिन इसका विस्तार किसी भी दशा में आपातकाल खत्म होने के बाद छह महीने की अवधि से अधिक नहीं हो सकता।

संसद की सदस्यता

अर्हताएं

संविधान ने संसद में चुने जाने के लिए निम्नलिखित अर्हता निर्धारित की हैं:

1. उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
2. उसे इस उद्देश्य के लिए चुनाव आयोग द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेनी होगी। अपने शपथ में वह सौगंध लेता है कि,
   (क) वह भारत के संविधान के प्रति सच्ची आस्था और निष्ठा रखेगा।
   (ख) वह भारत की संप्रभुता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण रखेगा।
3. उसे राज्यसभा में स्थान के लिए कम से कम 30 वर्ष की आयु का और लोकसभा में स्थान के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु का होना चाहिए।
4. उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं होनी चाहिए, जो संसद द्वारा मांगी गई हों।

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) में संसद ने निम्नलिखित अन्य अर्हतायें निर्धारित की हैं:

1. उस व्यक्ति को, राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के उस निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। यह लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों के निर्वाचन के लिये अनिवार्य है। वर्ष 2003 में सरकार ने राज्यसभा के निर्वाचन के लिये यह बाध्यता समाप्त कर दी। बाद में वर्ष 2006 में उच्चतम न्यायालय ने भी सरकार के इस निर्णय को वैध ठहराया।
2. यदि कोई व्यक्ति आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना चाहता है तो उसे किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्रों में अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य होना चाहिए। हालांकि अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य उन सीटों के लिए चुनाव लड़ सकते हैं, जो उनके लिए आरक्षित नहीं हैं।

निरर्हताएं

संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति संसद सदस्य नहीं बन सकता:

1. यदि वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है (संसद द्वारा तय कोई पद या मंत्री पद को छोड़कर)[8]।
2. यदि वह विकृत चित्त है और न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है।
3. यदि वह घोषित दिवालिया है।
4. यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा को अभिस्वीकार किए हुए है।
5. यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा निरर्हित कर दिया जाता है।

संसद ने जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) में निम्नलिखित अन्य निरर्हताएं निर्धारित की हैं:

1. वह चुनावी अपराध या चुनाव में भ्रष्ट आचरण के तहत दोषी करार न दिया गया हो।
2. उसे किसी अपराध में दो वर्ष या उससे अधिक की सजा न हुई हो। परन्तु प्रतिबंधात्मक निषेध विधि के अंतर्गत किसी व्यक्ति का बंदीकरण निरर्हता नहीं है।
3. वह निर्धारित समय के अंदर चुनावी खर्च का ब्यौरा देने में असफल न रहा हो।
4. उसे सरकारी ठेका, काम या सेवाओं में कोई दिलचस्पी न हो।
5. वह निगम में लाभ के पद या निदेशक या प्रबंध निदेशक के पद पर न हो, जिसमें सरकार का 25 प्रतिशत हिस्सा हो।
6. उसे भ्रष्टाचार या निष्ठाहीन होने के कारण सरकारी सेवाओं से बर्खास्त न किया गया हो।
7. उसे विभिन्न समूहों में शत्रुता बढ़ाने या रिश्वत खोरी के लिए दंडित न किया गया हो।
8. उसे इनमें छुआछूत, दहेज व सती जैसे सामाजिक अपराधों का प्रसार और संलिप्त न पाया गया हो।

किसी सदस्य में उपरोक्त निरर्हताओं संबंधी प्रश्न पर राष्ट्रपति का फैसला अंतिम होगा, यद्यपि राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग से राय लेकर उसी के तहत कार्य करना चाहिए।

दल-बदल के आधार पर निरर्हता

संविधान के अनुसार किसी व्यक्ति को संसद की सदस्यता के निरर्ह ठहराया जा सकता है, अगर उसे दसवीं अनुसूची के उपबंधों के अनुसार, दल-बदल का दोषी पाया गया हो। सदस्यों को दल बदल विधि के निम्नलिखित उपबंधों के तहत निरर्ह करार दिया जा सकता है:

1. अगर वह स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल का त्याग करता है, जिस दल के टिकट पर उसे चुना गया हो।
2. अगर वह अपने राजनीतिक दल द्वारा दिए निर्देशों के विरुद्ध सदन में मतदान करता है या नहीं करता है।
3. अगर निर्दलीय चुना गया सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है।
4. अगर कोई नामित या नाम निर्देशित सदस्य छह महीने के बाद किसी राजनीतिक दल में शामिल होता है।

दसवीं अनुसूची के तहत निरर्हता के सवालों का निपटारा राज्यसभा में सभापति व लोकसभा में अध्यक्ष करता है (न कि भारत का राष्ट्रपति)। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि सभापति/अध्यक्ष के निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

स्थानों का रिक्त होना

निम्नलिखित स्थितियों में संसद सदस्य स्थान रिक्त करता है:

1. **दोहरी सदस्यता:** कोई भी व्यक्ति एक समय में संसद के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता। इस कारण, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में निम्नलिखित प्रावधान हैं:
   (क) यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों में चुन लिया जाता है तो उसे 10 दिनों के भीतर यह बताना होगा कि उसे किस सदन में रहना है। सूचना न देने पर, राज्यसभा में उसकी सीट खाली हो जाएगी।
   (ख) अगर किसी सदन का सदस्य, दूसरे सदन का भी सदस्य चुन लिया जाता है तो पहले वाले सदन में उसका पद रिक्त हो जाता है।
   (ग) अगर कोई व्यक्ति एक ही सदन में दो सीटों पर चुना जाता है, तो उसे स्वेच्छा से किसी एक सीट को खाली करने का अधिकार है। अन्यथा, दोनों सीटें रिक्त हो जाती हैं।

   इसी प्रकार, कोई व्यक्ति एक ही समय संसद या राज्य के विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं हो सकता। अगर कोई व्यक्ति निर्वाचित होता है तो उसे 14 दिनों के अंदर राज्य के विधानमंडल की सीट को खाली करना होता है, अन्यथा संसद में उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।[9]
2. **निरर्हता:** यदि कोई व्यक्ति संविधान में दी गई विनिर्दिष्ट निरर्हता से ग्रस्त पाया जाता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। यहां, विनिर्दिष्ट निरर्हता में संविधान की दसवीं अनुसूची में दर्ज निरर्हता में दल-बदल भी शामिल है।
3. **पदत्याग:** कोई सदस्य, यथा स्थिति, राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष को संबोधित त्यागपत्र द्वारा अपना स्थान त्याग सकता है। त्यागपत्र स्वीकार होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है। हालांकि सभापति या अध्यक्ष त्यागपत्र को स्वीकार नहीं भी कर सकता है, बशर्ते उसे ऐसा लगे कि त्यागपत्र स्वेच्छा से नहीं दिया गया है या वास्तविक नहीं है।
4. **अनुपस्थिति:** यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना 60 दिन की अवधि से अधिक समय के लिए सदन की सभी बैठकों में अनुपस्थित रहता है तो सदन उसका पद रिक्त घोषित कर सकता है। 60 दिनों की अवधि की गणना में, सदन के स्थगन या सत्रावसान की लगातार चार दिनों से अधिक अवधि, को शामिल नहीं किया जाता है।
5. **अन्य स्थितियां:** किसी सदस्य को संसद की सदस्यता रिक्त करनी होती है:
   (क) यदि न्यायालय उस चुनाव को अमान्य या शून्य करार देता है।
   (ख) यदि उसे सदन द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है।
   (ग) यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति चुन लिया जाता है।
   (घ) यदि उसे किसी राज्य का राज्यपाल बनाया जाता है।

अगर कोई निरर्ह व्यक्ति संसद में निर्वाचित होता है तो संविधान की किसी प्रक्रिया द्वारा उसके चुनाव को शून्य या अमान्य नहीं करार दिया जा सकता। ऐसे मुद्दों को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वारा सुलझाया जाता है। इसके अंतर्गत उच्च न्यायालय

चुनाव को अमान्य या शून्य ठहरा सकता है। असंतुष्ट व्यक्ति को उच्च न्यायालय के इस निर्णय के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार है।

शपथ या प्रतिज्ञान

संसद के प्रत्येक सदन का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति या उसके द्वारा इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ या प्रतिज्ञान लेता है और उस पर हस्ताक्षर करता है। शपथ या प्रतिज्ञान में संसद सदन प्रतिज्ञा करता है, कि मैं:

1. भारत के संविधान में सच्ची श्रद्धा व निष्ठा रखूंगा।
2. भारत की प्रभुता व अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।
3. कर्तव्यों की श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।

जब तक सदस्य शपथ नहीं ले लेता, तब तक वह सदन की किसी बैठक में हिस्सा नहीं ले सकता है और न ही मत दे सकता है। वह संसद के विशेषाधिकारों और उत्मुक्तियों का भी हकदार नहीं होता।

निम्नलिखित परिस्थितियों में यदि कोई व्यक्ति सदन के सदस्य के रूप बैठता है तो उसे प्रतिदिन 500 रुपए जुर्माने भरना होगा:

1. शपथ या प्रतिज्ञान लेने से पहले,
2. अगर वह जानता है कि वह अर्हता नहीं रखता, या वह सदस्यता के लिए अर्हता नहीं रखता है,
3. जब उसे मालूम हो कि किसी संसदीय विधि के तहत उसे संसद में बैठने या मत देने का अधिकार नहीं है।

वेतन और भत्ते

संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को संसद द्वारा निर्धारित वेतन व भत्ते लेने का अधिकार है। संविधान में इनके लिए पेंशन का कोई प्रावधान नहीं है लेकिन संसद अपने सदस्यों को पेंशन देती है।

1954 में संसद ने संसद सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम बनाया। 2010 में संसद ने सदस्यों का वेतन 16000 रु. से बढ़ाकर 50,000 रु. प्रतिमाह, निर्वाचन क्षेत्र भत्ता 20,000 रु. से बढ़ाकर 45,000 रु. प्रतिमाह, दैनिक भत्ता 1000 रु. से बढ़ाकर 2000 रु. (ड्यूटी के प्रत्येक दिन के आवास के लिए) तथा कार्यालय खर्च भत्ता 20,000 रु. से बढ़ाकर 45,000 रु. प्रतिमाह कर दिया।

1976 से सदस्य, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के रूप में हर पांच वर्ष की अवधि के लिए पेंशन पाने के हकदार हो गए। इसके अलावा उन्हें यात्रा सुविधाएं, मुफ्त आवास, टेलीफोन, वाहन खर्च, चिकित्सा सुविधा आदि भी मिलती है।

लोकसभा अध्यक्ष व राज्यसभा के या सभापति के वेतन व भत्ते भी संसद निर्धारित करती है। वह भारत की संचित निधि पर भारित है और वह संसद के वार्षिक मत के अधीन नहीं है।

1953 में संसद में संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम के अंतर्गत (जैसा कि संशोधित किया गया), राज्य सभा के सभापति का वेतन 1.25 लाख प्रति माह[9a] निर्धारित किया गया। उसी प्रकार संसद के अन्य पदाधिकारी (लोकसभाध्यक्ष, लोकसभा के उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा के उपसभापति) उसी दर पर वेतन एवं भत्ते लेने के अधिकारी हैं जो दर संसद सदस्यों के लिए निर्धारित है।[9b] इसके अलावा संसद का प्रत्येक पदाधिकारी (राज्य सभा के सभापति सहित) दैनिक भत्ता प्राप्त करने का भी अधिकारी है। (पूरे कार्यकाल के लिए प्रतिदिन) जिस दर पर संसद सदस्यों को देय है।[9C] साथ ही संसद के प्रत्येक पदाधिकारी (राज्यसभा के सभापति को छोड़कर) को उसी दर पर चुनाव क्षेत्र भत्ता (Contituency allowance) देय है जो दर संसद सदस्यों पर लागू है।[9d]

उसी अधिनियम के अनुसार लोकसभाध्यक्ष को भी न्यायिक भत्ता (Sumptuary allowance) उसी दर पर प्राप्त होता है जो दर कैबिनेट मंत्री को देय है[9e] (रु. 2000 प्रतिमाह)। उसी प्रकार लोकसभा के उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा के उपसभापति को जो न्यायिक भत्ता मिलता है वह राज्यमंत्री को देय दर के बराबर होता है।[9f] (रु. 1000 प्रतिमाह)।

संसद के पीठासीन अधिकारी

संसद के प्रत्येक सदन के अपने पीठासीन अधिकारी होते हैं। लोकसभा में अध्यक्ष व उपाध्यक्ष और राज्यसभा में सभापति व उपसभापति होते हैं। इसके अलावा लोकसभा में सभापति का पैनल व राज्यसभा में उपसभापति का पैनल भी नियुक्त किया जाता है।

लोकसभा अध्यक्ष

निर्वाचन एवं पदावधि

पहली बैठक के पश्चात उपस्थित सदस्यों के बीच से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। जब अध्यक्ष का स्थान रिक्त होता है तो

लोकसभा इस रिक्त स्थान के लिए किसी अन्य सदस्य को चुनती है। राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव की तारीख निर्धारित करता है।

आमतौर पर अध्यक्ष लोकसभा के जीवनकाल तक पद धारण करता है। हालांकि उसका पद निम्नलिखित तीन मामलों में से इससे पहले भी समाप्त हो सकता है:

1. यदि वह सदन का सदस्य नहीं रहता,
2. यदि वह उपाध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग करे
3. यदि लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्य बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे उसके पद से हटाएं। ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा जब तक कि उस संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम से कम 14 दिन की सूचना न दे दी गई हो।

जब अध्यक्ष को हटाने के लिए संकल्प विचाराधीन है तो अध्यक्ष पीठासीन नहीं होगा किंतु उसे लोकसभा में बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा। ऐसी स्थिति में उसे मत देने का भी अधिकार होगा परंतु मतों के बराबर होने की दशा में मत देने का अधिकार नहीं होगा।

यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब लोकसभा विघटित होती है, अध्यक्ष अपना पद नहीं छोड़ता वह नई लोकसभा की बैठक तक पद धारण करता है।

भूमिका, शक्ति व कार्य

अध्यक्ष, लोकसभा व उसके प्रतिनिधियों का मुखिया होता है। वह सदस्यों की शक्तियों व विशेषाधिकार का अभिभावक होता है। वह सदन का मुख्य व प्रवक्ता होता है और सभी संसदीय मसलों में उसका निर्णय अंतिम होता है। अत: वह लोकसभा का पीठासीन अधिकारी ही नहीं बल्कि इससे अधिक है। इस पद पर अध्यक्ष के पास असीम व महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां होती हैं तथा वह सदन के अंदर सम्मान, उच्च प्रतिष्ठा व सर्वोच्च अधिकार का उपभोग करता है।

लोकसभा का अध्यक्ष तीन स्रोतों—भारत का संविधान, लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम तथा संसदीय परंपराओं से अपनी शक्तियों व कर्तव्यों को प्राप्त करता है। अध्यक्ष की शक्तियां व कर्तव्य निम्नलिखित हैं:

1. सदन की कार्यवाही व संचालन के लिए वह नियम व विधि का निर्वहन करता है। यह उसका प्राथमिक कर्तव्य है। उसका निर्णय अंतिम होता है।
2. सदन के भीतर वह भारत के संविधान, लोकसभा की प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम तथा संसदीय पूर्वादाहरणों का अंतिम व्याख्याकार होता है।
3. अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि गणपूर्ति (कोरम) के अभाव में सदन को स्थगित कर दे। सदन की बैठक के लिए गणपूर्ति, सदन की संख्या का दसवां भाग होता है।
4. सामान्य स्थिति में मत नहीं देता है परंतु बराबरी की स्थिति में वह मत दे सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी मुद्दे पर अगर सदन समान रूप से विभाजित हो तो वह अपने मत का प्रयोग कर सकता है। ऐसे मत को निर्णायक मत कहा जाता है और इसका तात्पर्य गतिरोध को समाप्त करना है।
5. अध्यक्ष, संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है। सदनों के बीच विधेयक पर गतिरोध समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति संयुक्त बैठक बुलाता है।
6. सदन के नेता के आग्रह पर वह गुप्त बैठक बुला सकता है। जब गुप्त बैठक की जाती है तो किसी अनजान व्यक्ति को चैंबर या गैलरी में जाने की इजाज़त नहीं होती है (अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए जाने को छोड़कर)।
7. अध्यक्ष यह तय करता है कि विधेयक, धन विधेयक है या नहीं और उसका निर्णय अंतिम होता है। राज्यसभा में सिफारिश या राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा जाने वाला विधेयक अध्यक्ष द्वारा सत्यापित होता है कि वह धन विधेयक है।
8. दसवीं अनुसूची के तहत दल-बदल उपबंध के आधार पर अध्यक्ष लोकसभा के किसी सदस्य की निरर्हता के प्रश्न का निपटारा करता है। 1992 में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस संबंध में अध्यक्ष के निर्णय को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।[10]
9. वे भारतीय संसदीय समूह के पदेन सभापति के रूप में कार्य करते हैं जो भारतीय संसद और विश्व के विभिन्न संसदों के बीच एक कड़ी है। वे देश में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के पदेन सभापति के रूप में भी कार्य करते हैं।

10. वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के सभापति नियुक्त करता है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है। वह स्वयं भी कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति व सामान्य प्रयोजन समिति का अध्यक्ष होता है।

स्वतंत्रता व निष्पक्षता

चूंकि अध्यक्ष के पद में प्रतिष्ठा, मर्यादा और प्राधिकार निहित है, अत: स्वतंत्रता और निष्पक्षता इसकी अनिवार्य शर्तें हैं।[11]

निम्नलिखित उपबंध अध्यक्ष की स्वतंत्रता व निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं:

1. वह सदन के जीवनकाल पर्यंत पद धारण करता है। उसे लोकसभा के तत्कालीन सदस्यों के विशेष बहुमत द्वारा संकल्प पारित करने पर हटाया जा सकता है (सामान्य बहुमत द्वारा नहीं)। इस प्रक्रिया पर विचार करने या चर्चा के लिए कम से कम 50 सदस्यों का समर्थन जरूरी है।
2. उसका वेतन व भत्ता संसद निर्धारित करती है।
3. उसके कार्यों व आचरण की लोकसभा में न तो चर्चा की जा सकती और न ही आलोचना (स्वतंत्र या मौलिक प्रस्ताव को छोड़कर)।
4. सदन की प्रकिया विनियमित करने या व्यवस्था रखने की उसकी शक्ति न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।
5. वह पहली बार मत नहीं देगा परंतु मत बराबर होने की दशा में निर्णायक मत कर सकता है। यह अध्यक्ष के पद को निष्पक्ष बनाता है।
6. वरीयता सूची में उसका स्थान काफी ऊपर है। उसे भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ सातवें स्थान पर रखा गया है। यानी वह प्रधानमंत्री या उप-प्रधानमंत्री को छोड़कर सभी कैबिनेट मंत्रियों से ऊपर है।

ब्रिटेन में, अध्यक्ष को आवश्यक रूप से किसी दल का सदस्य नहीं होना चाहिए। ऐसी परंपरा है कि अध्यक्ष को अपने दल से त्यागपत्र देना पड़ता है और वह राजनीतिक रूप से निष्पक्ष रहता है। ऐसी स्वस्थ परंपरा भारत में नहीं है क्योंकि यहां अध्यक्ष अपने दल की सदस्यता नहीं त्यागता है।

लोकसभा उपाध्यक्ष

अध्यक्ष की तरह, उपाध्यक्ष भी लोकसभा के सदस्यों द्वारा चुना जाता है। अध्यक्ष के चुने जाने के बाद उपाध्यक्ष को चुना जाता है। उपाध्यक्ष के चुनाव की तारीख अध्यक्ष निर्धारित करता है। जब उपाध्यक्ष का स्थान रिक्त होता है तो लोकसभा दूसरे सदस्य को इस स्थान के लिए चुनती है।

अध्यक्ष की ही तरह, उपाध्यक्ष भी सदन के जीवनपर्यंत अपना पद धारण करता है। परंतु वह निम्नलिखित तीन स्थितियों द्वारा अपना पद छोड़ सकता है:

1. उसके सदन के सदस्य न रहने पर;
2. अध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित त्यागपत्र द्वारा, और;
3. लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे अपने पद से हटाए जाने पर। ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस संकल्प को प्रस्तावित करने के आशय की कम से कम 14 दिन पूर्व सूचना न दी गई हो।

अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर उपाध्यक्ष, उनके कार्यों को करता है। सदन की बैठक में अध्यक्ष की अनुपस्थिति की दशा में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के तौर पर काम करता है। दोनों ही स्थितियों में वह अध्यक्ष की शक्ति का निर्वहन करता है। संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष पीठासीन होता है।

उल्लेखनीय है कि उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के अधीनस्थ नहीं होता है। वह प्रत्यक्ष रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है।

उपाध्यक्ष के पास एक विशेषाधिकार होता है। उसे जब कभी भी किसी संसदीय समिति का सदस्य बनाया जाता है तो वह स्वाभाविक रूप से उसका सभापति बन जाता है।

अध्यक्ष की तरह, उपाध्यक्ष भी जब पीठासीन होता है, वह पहली बार मत नहीं दे सकता। केवल मत बराबर होने की दशा में मत करता है। जब उपाध्यक्ष को हटाने का संकल्प विचाराधीन होता है तो वह पीठासीन नहीं होगा, हालांकि उसे सदन में उपस्थित रहने का अधिकार है।

जब अध्यक्ष सदन में पीठासीन होता है तो उपाध्यक्ष सदन के अन्य दूसरे सदस्यों की तरह होता है। उसे सदन में बोलने, कार्यवाही में भाग लेने और किसी प्रश्न पर मत देने का अधिकार है।

उपाध्यक्ष संसद द्वारा निर्धारित किए गए वेतन व भत्ते का हकदार है जो भारत की संचित निधि द्वारा देय होता है।

10वीं लोकसभा तक, अध्यक्ष व उपाध्यक्ष अमूमन सत्ताधारी दल के होते थे। 11वीं लोकसभा से इस पर सहमति हुई कि अध्यक्ष सत्ताधारी दल (घटक) का हो व उपाध्यक्ष मुख्य विपक्षी दल से हो।

अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, पद धारण करते समय कोई अलग शपथ या प्रतिज्ञा नहीं लेता है।

'अध्यक्ष व उपाध्यक्ष' संस्था का उद्भव भारत सरकार अधिनियम, 1919 के उपबंध के तहत 1921 में हुआ था। उस समय अध्यक्ष व उपाध्यक्ष क्रमश: प्रेसीडेंट व डिप्टी प्रेसीडेंट कहलाते थे, यह नामाकरण 1947 तक चलता रहा। 1921 से पहले भारत का गवर्नर जनरल केंद्रीय विधानपरिषद की बैठक का पीठासीन अधिकारी होता था। 1921 में भारत के गवर्नर जनरल ने फ्रेड्रिक व्हाइट व सच्चिदानंद सिन्हा को क्रमश: पहला अध्यक्ष व पहला उपाध्यक्ष नियुक्त किया। 1925 में विट्ठलभाई जे. पटेल को केंद्रीय विधानपरिषद का पहला निर्वाचित अध्यक्ष चुना गया, जो पहले भारतीय थे। भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत प्रेसीडेंट व डिप्टी प्रेसीडेंट को क्रमश: अध्यक्ष व उपाध्यक्ष कहा गया। हालांकि पुरानी व्यवस्था 1947 तक चलती रही क्योंकि 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, संघीय भाग को कार्यान्वित नहीं किया गया। जी.वी. मावलंकर व अनंत सयानाम आयंगर को क्रमश: लोकसभा का पहला अध्यक्ष व पहला उपाध्यक्ष बनाया गया। जी.वी. मावलंकर को संविधान सभा के अध्यक्ष के साथ-साथ प्रांतीय संसद का भी अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उन्होंने एक दशक तक (1946 से 1956 तक) लोकसभा के अध्यक्ष का पद संभाला।

लोकसभा के सभापतियों की तालिका

लोकसभा के नियमों के अंतर्गत, अध्यक्ष सदस्यों में से 10 को सभापति तालिका के लिए नामांकित करता है। इनमें से कोई भी अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में संसद का पीठासीन अधिकारी हो सकता है। पीठासीन होने पर उसकी शक्ति अध्यक्ष के समान ही होती है। वह तब तक पद धारण करता है जब तक नई सभापति तालिका का नामांकन न हो जाए। जब इस पैनल का सदस्य अनुपस्थित रहता है तो सदन किसी अन्य व्यक्ति को अध्यक्ष निर्धारित करता है।

यहां यह बात ध्यानाकर्षण योग्य है कि जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो तो सभापति तालिका का सदस्य सदन का पीठासीन अधिकारी नहीं हो सकता है। इस अवधि के लिए अध्यक्ष के कर्त्तव्य का निर्वाह वह व्यक्ति करेगा, जिसे राष्ट्रपति ने नियुक्त किया हो। रिक्त पदों के लिए जितना जल्द हो सके, चुनाव कराया जाता है।

सामायिक अध्यक्ष

संविधान में व्यवस्था है कि पिछली लोकसभा के अध्यक्ष नई लोकसभा की पहली बैठक के ठीक पहले तक अपने पद पर रहता है। इसलिए राष्ट्रपति, लोकसभा के एक सदस्य को सामायिक अध्यक्ष नियुक्त करता है। आमतौर पर लोकसभा के वरिष्ठ सदस्य को इसके लिए चुना जाता है। राष्ट्रपति खुद सामायिक अध्यक्ष को शपथ दिलाता है।

सामायिक अध्यक्ष को स्थायी अध्यक्ष के समान ही शक्तियां प्राप्त होती हैं। वह नई लोकसभा की पहली बैठक में पीठासीन अधिकारी होता है। उसका मुख्य कर्तव्य नए सदस्यों को शपथ दिलवाना है। वह सदन को नए अध्यक्ष का चुनाव करने के लिए मदद करता है।

जब नया अध्यक्ष चुन लिया जाता है, तो सामायिक अध्यक्ष का पद खुद समाप्त हो जाता है। अत: यह पद अल्पकालीन होता है।[12]

राज्यसभा का सभापति

राज्यसभा का पीठासीन अधिकार सभापति कहलाता है। देश का उपराष्ट्रपति इसका पदेन सभापति होता है। जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में काम करता है तो वह राज्यसभा के सभापति के रूप में काम नहीं करता है।

राज्यसभा के सभापति को तब ही पद से हटाया जा सकता है जब उसे उपराष्ट्रपति पद से हटा दिया जाए। पीठासीन अधिकारी के रूप में सभापति की शक्ति व कार्य लोकसभा के अध्यक्ष के समान होती हैं। हालांकि, लोकसभा अध्यक्ष के पास दो विशेष शक्तियां होती हैं, जो सभापति के पास नहीं होती है:

1. लोकसभा अध्यक्ष यह तय करता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, और उसका निर्णय अंतिम होता है।
2. लोकसभा अध्यक्ष, संसद की संयुक्त बैठक का पीठासीन अधिकारी होता है।

अध्यक्ष के विपरीत (सदन का सदस्य होता है) सभापति सदन का सदस्य नहीं होता है। परंतु अध्यक्ष की तरह सभापति भी पहली बार मत नहीं दे सकता। मत बराबर होने की स्थिति में ही वह मत दे सकता है।

जब उपराष्ट्रपति को सभापति पद से हटाने का संकल्प विचाराधीन हो तो वह राज्यसभा का पीठासीन अधिकारी नहीं होगा हालांकि वह सदन में उपस्थित रह सकता है, बोल सकता है और सदन की कार्यवाही में हिस्सा ले सकता है, लेकिन मत नहीं दे सकता, जबकि लोकसभा अध्यक्ष पहली बार मत दे सकता है अगर उसे हटाने का संकल्प विचाराधीन हो।

अध्यक्ष की तरह सभापति का वेतन और भत्ते भी संसद निर्धारित करती है, जो भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं। वह भारतीय संसदीय समूह के पदेन अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है जो कि भारत की संसद और दुनिया की संसदों के बीच कड़ी का कार्य करता है।

जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है तो उसे राज्यसभा से कोई वेतन या भत्ता नहीं मिलता है। इस अवधि में वह राष्ट्रपति को मिलने वाले वेतन एवं भत्ते प्राप्त करता है।

राज्यसभा का उपसभापति

राज्यसभा अपने सदस्यों के बीच से स्वयं अपना उपसभापति चुनती है। जब किसी कारण से उपसभापति का स्थान रिक्त हो जाता है तो राज्यसभा के सदस्य अपने बीच से नया उपसभापति चुन लेते हैं।

उपसभापति अपना पद निम्नलिखित तीन में से किसी कारण से छोड़ता है:

1. यदि राज्यसभा से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाए।
2. यदि वह सभापति को अपना लिखित इस्तीफा सौंप दे।
3. यदि राज्यसभा में बहुमत द्वारा उसको हटाने का प्रस्ताव पास हो जाए। इस तरह का कोई भी प्रस्ताव 14 दिन के पूर्व नोटिस के बाद ही दिया जा सकता है।

उपसभापति सदन में सभापति का पद खाली होने पर सभापति के रूप में कार्य करता है। सभापति की अनुपस्थिति में भी वह बतौर सभापति कार्य करता है। दोनों ही मामलों में उसके पास सभापति की सारी शक्तियां होती हैं।

इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि उपसभापति सभापति के अधीनस्थ नहीं होता। वह राज्यसभा के प्रति सीधे उत्तरदायी होता है।

सभापति की तरह ही उपसभापति भी सदन की कार्यवाही के दौरान पहले मत नहीं दे सकता। दोनों ओर से बराबर वोट पड़ने की स्थिति में वह निर्णायक मत दे सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि जब उसे हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो वह सदन की कार्यवाही में पीठासीन नहीं होता, भले ही वह सदन में उपस्थित हो।

जब सभापित राज्यसभा की अध्यक्षता करता है तो उपसभापति एक साधारण सदस्य की तरह होता है। वह बोल सकता है, कार्यवाही में भाग ले सकता है तथा मतदान की स्थिति में मत भी दे सकता है।

सभापति की तरह ही उपसभापति भी नियमित वेतन एवं भत्तों का अधिकारी होता है। उसे संसद द्वारा तय किया गया वेतन भत्ता मिलता है, जिसका भुगतान भारत की संचित निधि पर भारित होता है।

राज्यसभा के उपसभापतियों की तालिका

राज्यसभा के नियमों के तहत, सभापति इसके सदस्यों के बीच से उपसभापतियों को मनोनीत करता है। सभापति एवं उपसभापति की अनुपस्थिति में इनमें से कोई भी सदन की अध्यक्षता कर सकता है। उस समय उसे सभापति के समान ही अधिकार एवं शक्तियां प्राप्त होती हैं।

जब पैनल में से कोई उपसभापति भी उपस्थित न हो तो दूसरा व्यक्ति जिसे सदन ने निर्धारित किया हो, बतौर सभापति कार्य करता है।

यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पैनल का सदस्य उस कार्यवाही का संचालन नहीं कर सकता जब सभापतियां उपसभापति का पद रिक्त होता है। इस समय, यह सभापति का दायित्व होता है कि वह उपसभापति की नियुक्ति करे। इस रिक्त स्थान को भरने के लिये जितना जल्द से जल्द हो सके, चुनाव कराया जाता है।

संसद का सचिवालय

संसद के दोनों सदनों का पृथक सचिवालय स्टाफ होता है यद्यपि इनमें से कुछ पद दोनों सदनों के लिए समान हैं। उनकी भर्ती एवं सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं। दोनों सदनों के सचिवालय का मुखिया महासचिव होता है। वह स्थायी अधिकारी होता है और

उसकी नियुक्ति सदन का अधिकारी करता है।

संसद में नेता

सदन का नेता

लोकसभा के नियमों के तहत 'सदन का नेता' का अभिप्राय है प्रधानमंत्री। यदि वह लोकसभा सदस्य है, या प्रधानमंत्री द्वारा 'सदन का नेता' के रूप में मनोनीत कोई मंत्री जो लोक सभा का सदस्य हो। राज्य सभा में भी एक 'सदन का नेता' होता है। वह मंत्री होता है और राज्यसभा का सदस्य भी जिसे प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत किया जाता है। यह सदनीय कार्य निष्पादन के लिए महत्वपूर्ण है और उसे उपनेता मनोनीत करने का अधिकार है, इसी तरह का कार्यकारी अमेरिका में 'बहुमत नेता' के रूप में जाना जाता है।

विपक्ष का नेता

संसद के दोनों सदनों में एक-एक 'विपक्ष का नेता' होता है। विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी के सदस्य कुल सदस्यों के दसवें हिस्से के करीब होने चाहिये। इतनी संख्या पर ही उसके नेता को 'विपक्ष का नेता' के रूप में मान्यता मिल सकती है। संसदीय व्यवस्था में विपक्ष का नेता महत्वपूर्ण भूमिका वाला होता है। उसका मुख्य कार्य सरकार के कार्यों की उचित आलोचना एवं वैकल्पिक सरकार की व्यवस्था करना होता है इसलिए लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता को 1977 में महत्ता मिली। उसे वेतन, भत्ते तथा सुविधाएं कैबिनेट मंत्री की तरह मिलती हैं। 1965 में पहली बार विपक्ष के नेता को मान्यता मिली थी। इसी तरह के कार्य वाले को अमेरिका में 'अल्पसंख्यक नेता' कहा जाता है।

ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था में एक अनोखी संस्था है जिसे 'शैडो कैबिनेट' (छाया मंत्रिमंडल) कहा जाता है। इसे विपक्षी दलों द्वारा सरकार के साथ तुलना के लिए बनाया जाता है और अपने सदस्यों को भविष्य के मंत्रियों के तौर पर तैयार किया जाता है। इसमें प्रत्येक कैबिनेट मंत्री के लिए विपक्ष का शैडो कैबिनेट होता है। यह 'शैडो कैबिनेट' सरकार परिवर्तन होने पर वैकल्पिक कैबिनेट मुहैया करता है। इसलिए आइवर जेनिंग्स ने विपक्ष के नेता को 'वैकल्पिक प्रधानमंत्री' कहा है। वह मंत्री के स्तर का होता है, जिसे सरकार वेतन देती है।

व्हिप (सचेतक)

यद्यपि सदन के नेता एवं विपक्ष के नेता का पद संविधान में उल्लिखित नहीं है फिर भी इन्हें सदन के नियम एवं संसदीय संविधी में क्रमश: उल्लिखित किया गया है। दूसरी ओर 'व्हिप' कार्यालय का उल्लेख न तो भारत के संविधान में न ही सदन के नियमों और न ही संसदीय संविधि में किया गया है। यह संसदीय सरकार की परंपराओं पर आधारित होता है।

प्रत्येक राजनीतिक दल का, चाहे वह सत्ता में हो या विपक्ष में, संसद में अपना व्हिप होता है। उसे राजनीतिक दल द्वारा सदन के सहायक नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है। उसकी जिम्मेदारी होती है कि वह अपने पार्टी के नेताओं को बड़ी संख्या में सदन में उपस्थित रखे और संबंधित मुद्दे के पक्ष या खिलाफ पार्टी का सहयोग करे। वह संसद में सदस्यों के व्यवहार पर नजर रखता है। सदस्यों के लिए माना जाता है कि वे व्हिप के निर्देशों का पालन करेंगे, अन्यथा अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है।

संसद के सत्र

आहूत करना (सभा में उपस्थित होने का आदेश)

संसद के प्रत्येक सदन को राष्ट्रपति समय-समय पर समन जारी करता है, लेकिन संसद के दोनों सत्रों के बीच अधिकतम अंतराल 6 माह से ज्यादा नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संसद को कम से कम वर्ष में दो बार मिलना चाहिए। सामान्यत: वर्ष में तीन सत्र होते हैं:

1. बजट सत्र (फरवरी से मई)।
2. मानसून सत्र (जुलाई से सितंबर)।
3. शीतकालीन सत्र (नवंबर से दिसंबर)।

संसद का सत्र प्रथम बैठक से लेकर सत्रवसान (या लोकसभा के मामले में विघटन के) मध्य की समयावधि है। सत्र के दौरान सदन कार्यों के संचालन हेतु प्रत्येक दिन आहूत होता है। एक सत्र के अत्रावसान एवं दूसरे सत्र के प्रारंभ होने के मध्य की समयावधि को 'अवकाश' कहते हैं।

स्थगन

संसद के एक सत्र में काफी बैठकें होती हैं। प्रत्येक बैठक में दो सत्र होते हैं, सुबह की बैठक 11 बजे से 1 बजे तक और दोपहर के भोजन के बाद 2 बजे से 6 बजे तक। संसद की बैठक को स्थगन या अनिश्चितकाल के लिए स्थगन या सत्रावसान या विघटन (लोकसभा के मामले में) द्वारा समाप्त किया जा सकता है। स्थगन द्वारा बैठक के कार्य को कुछ निश्चित समय, जो कुछ घण्टे, दिन या सप्ताह हो सकता है, के लिए निलंबित किया जाता है।

तालिका 22.1 *स्थगन बनाम सत्रावसान*

स्थगन	सत्रावसान
1. यह सिर्फ एक बैठक को समाप्त करता है न कि सत्र को।	1. यह न केवल बैठक बल्कि सदन के सत्र को समाप्त करता है।
2. यह सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा किया जाता है।	2. इसे राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।
3. यह किसी विधेयक या सदन में विचाराधीन काम पर असर नहीं डालता क्योंकि वही काम दोबारा होने वाली बैठक में किया जा सकता है।	3. यह भी किसी विधेयक पर प्रभाव नहीं डालता लेकिन बचे हुए काम के लिए अगले सत्र में नया नोटिस देना पड़ता है।[13] ब्रिटेन में सत्रावसान के कारण विधेयक या अन्य लंबित कार्य समाप्त माने जाते हैं।

अनिश्चित काल के लिए स्थगन

अनिश्चित काल के लिए स्थगन का अभिप्राय है, सदन को अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया जाना। दूसरे शब्दों में, जब सदन को बिना यह बताये स्थगित कर दिया जाता है कि अब उसे किस दिन आहूत किया जायेगा तो इसे *अनिश्चित काल के लिए स्थगन* कहते हैं। अनिश्चित काल के लिए स्थगन करने की शक्ति अध्यक्ष या सभापति को होती है। वह स्थगत दिन या समय से पहले भी सदन की बैठक आहूत कर सकता है, या अनिश्चित काल के लिए स्थगन के उपरांत किसी भी समय।

सत्रावसान

पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष या सभापति) सदन को सत्र के पूर्ण होने पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता है। इसके कुछ दिनों में ही राष्ट्रपति सदन सत्रावसान की अधिसूचना जारी करता है। हालांकि राष्ट्रपति सत्र के दौरान भी सत्रावसान कर सकता है।

सदन के स्थगन एवं सत्रावसान में अंतर को तालिका संख्या 22.1 में दर्शाया गया है।

विघटन

एक स्थायी सदन होने के कारण राज्यसभा विघटित नहीं की जा सकती। सिर्फ लोकसभा का विघटन होता है। सत्रावसान के विपरीत विघटन विघमान सभा के जीवनकाल को समाप्त कर देता है और इसका पुनर्गठन नए चुनाव के बाद ही होता है। लोकसभा को दो कारणों से विघटित किया जा सकता है:

1. स्वयं विघटित, जब इसके पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाए या वह काल पूरा हो जाए जब राष्ट्रीय आपातकाल के लिए समय बढ़ाया गया हो, या
2. जब राष्ट्रपति सदन को विघटित करने का निर्णय ले। जिसे लेने के लिए वह प्राधिकृत है। अपनी सामान्य कालावधि से पूर्व सदन का विघटन अपरिवर्तनीय विघटन है।

जब लोकसभा विघटित की जाती है तो इसके सारे कार्य, जैसे—विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प नोटिस, याचिका आदि समाप्त हो जाते हैं। उन्हें नवगठित लोकसभा में दोबारा लाना जरूरी है। यद्यपि जिन लंबित विधेयकों और सभी लंबित आश्वासनों, जिनकी जांच सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति द्वारा की जानी होती है, लोक सभा के विघटन पर समाप्त नहीं होते हैं, समाप्त होने वाले विधेयकों के संबंध में निम्नलिखित स्थिति होती है:

1. विचाराधीन विधेयक, जो लोकसभा में हैं (चाहे लोकसभा में रखे गये हों या फिर राज्यसभा द्वारा हस्तांतरित किये गये हों)।
2. लोकसभा में पारित किंतु राज्यसभा में विचाराधीन विधेयक समाप्त हो जाता है।
3. ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों में असहमति के कारण पारित न हुआ हो और राष्ट्रपति ने विघटन होने से पूर्व दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई हो, समाप्त नहीं होता।
4. ऐसा विधयेक जो राज्यसभा में विचाराधीन हो लेकिन लोकसभा द्वारा पारित न हो, समाप्त नहीं होता।
5. ऐसा विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए विचाराधीन हो, समाप्त नहीं होता।
6. ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों द्वारा पारित हो लेकिन राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटा दिया गया हो, समाप्त नहीं होता।

गणपूर्ति (कोरम)

'कोरम' या गणपूर्ति सदस्यों की न्यूनतम संख्या है, जिनकी उपस्थिति से सदन का कार्य संपादित होता है। यह प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी समेत कुल सदस्यों का दसवां हिस्सा होता है। इसका अर्थ है कि यदि कोई कार्य करना है तो लोकसभा में कम से कम 55 सदस्य एवं राज्यसभा में कम से कम 25 सदस्य अवश्य होने चाहिये। यदि सदन के संचालन के समय कोरम पूरा नहीं होता है तो यह अध्यक्ष या सभापति का दायित्व है कि वह या तो सदन को स्थगित कर दे या गणपूर्ति तक कोई कार्य संपन्न न करे।

सदन में मतदान

सभी मामलों पर सदन में या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्यों के बहुमत से (पीठासीन अधिकारी के अलावा) निर्णय लिया जाता है। संविधान में उल्लेखित कुछ विशिष्ट मामलों, जैसे—राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग, संविधान संशोधन कार्यवाही, पीठासीन अधिकारियों को हटाना आदि में विशेष बहुमत की जरूरत होती है।

सदन का पीठासीन अधिकारी पहले प्रयास में मत नहीं देता है लेकिन मत बराबर होने की दशा में वह मतदान कर सकता है। सदन की कार्यवाही किसी अनाधिकृत मतदान या भागीदारी या इसकी सदस्यता में किसी रिक्त के बावजूद वैध होगी।

लोकसभा में मतदान प्रक्रिया के संदर्भ में निम्नलिखित बिन्दु उल्लेखनीय हैं-

1. चर्चा के अंत में लोकसभाध्यक्ष प्रश्न पूछकर प्रस्ताव के बारे में सदस्यों की राय आमंत्रित करते हैं जो प्रस्ताव के पक्ष में हैं वे 'अये' (Aye) बोलें और जो प्रस्ताव के विरोध में हों 'नो' (No) बोलें।
2. लोकसभाध्यक्ष तब कहते हैं "मैं समझता हूं प्रस्ताव अयेस (Ayes) के पक्ष में (पर नोज (Noes), जैसी भी स्थिति हो) है।" यदि प्रश्न के बारे में लोकसभाध्यक्ष के निर्णय को चुनौती नहीं दी जाती, तब वे दो बार बोलेंगे-'अयेस (अथवा नोज, जैसी भी स्थिति हो) हैब इट' और उसी अनुसार सदन के समक्ष प्रश्न का निश्चय हो जाएगा।
3. (a) यदि किसी प्रश्न को लेकर लोकसभाध्यक्ष के निर्णय को चुनौती दी जाती है, तब वह आदेश करेंगे कि लॉबी स्पष्ट हो जाएं।
   (b) तीन मिनट और तीन सेकंड बीत जाने पर वह प्रश्न दोबारा पूछेंगे और घोषणा करेंगे कि उनकी राय में जीत 'अयेस' की हुई है या 'नोज' की।
   (c) यदि सभाध्यक्ष को इस प्रकार घोषित की गई राय को फिर चुनौती मिलती है तब वह निदेश देंगे कि मतों को स्वचालित वोट रिकार्डर से रिकार्ड किया जाए या 'अये' तथा 'नो' स्लिप का उपयोग किया जाए या फिर सदस्य लॉबी में चले जाएं।
4. यदि लोकसभाध्यक्ष की राय में कि बंटवारे (वोट का) का अनावश्यक दावा किया गया है वे सदस्यों से कह सकते हैं कि 'अये' और 'नो' वाले सदस्य अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो जाएं जब गिनती हो। तब वे सदन के निश्चय की घोषणा कर सकते हैं। इस मामले में मतदाताओं के नाम नहीं रिकार्ड किए जाएंगे।

संसद में भाषा

संविधान ने हिंदी और अंग्रेजी भाषा को सदन की कार्यवाही की भाषा घोषित की है। हालांकि पीठासीन अधिकारी किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने का अधिकार दे सकता है। दोनों ही सदनों में समानांतर रूप से अनुवाद की व्यवस्था है। तथापि यह व्यवस्था की गयी थी कि संविधान लागू होने की तिथी के 15 वर्षों बाद अंग्रेजी स्वयमेव समाप्त हो जायेगी (यह तिथी 1965 थी)। वैसे राजभाषा अधिनियम, 1963 हिन्दी के साथ अंग्रेजी की निरंतरता की अनुमति देता है।

मंत्रियों एवं महान्यायवादी के अधिकार

सदन का सदस्य होने के अतिरिक्त प्रत्येक मंत्री एवं भारत के महान्यायवादी को इस बात का अधिकारी हाता है कि वह सदन में अपने विचार व्यक्त कर सकता है, सदन की कार्यवाही में भाग ले सकता है, दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाग ले सकता है। ये सदन की किसी समिति, जिसके वे सदस्य हैं, की बैठक या कार्यवाही में भी भाग ले सकते हैं लेकिन मतदान के अधिकार बिना। इस संवैधानिक उपबंध की पृष्ठभूमि में दो कारण हैं:

1. एक मंत्री, उस सदन की कार्यवाही में भी भाग ले सकता है, जिसका वह सदस्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, एक

मंत्री जो लोकसभा का सदस्य है राज्यसभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है उसी तरह एक मंत्रि, जो राज्यसभा का सदस्य है, लोकसभा की कार्यवाही में भाग ले सकता है।

2. एक मंत्री, जो किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग ले सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि कोई भी मंत्री बिना किसी सदन का सदस्य बने मात्र छह महीने तक ही मंत्री रह सकता है।

लेम-डक सत्र

यह नयी लोकसभा के गठन से पूर्व वर्तमान लोकसभा का अंतिम सत्र होता है। वर्तमान लोकसभा के वे सदस्य, जो नयी लोकसभा हेतु निर्वाचित नहीं हो पाते 'लेम-डक' कहलाते हैं।

संसदीय कार्यवाही के साधन

प्रश्नकाल

संसद का पहला घंटा प्रश्नकाल के लिए होता है। इस दौरान सदस्य प्रश्न पूछते हैं और सामान्यत: मंत्री उत्तर देते हैं। प्रश्न तीन तरह के होते हैं—तारांकित, अतारांकित तथा अल्प सूचना वाले।

तारांकित प्रश्नों का उत्तर मौखिक दिया जाता है तथा इसके बाद पूरक प्रश्न पूछे जाते हैं।

दूसरी ओर **अतारांकित प्रश्न** के मामले में लिखित रिपोर्ट आवश्यक होती है इसलिये इसके बाद पूरक प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

अल्प सूचना के प्रश्न वे प्रश्न होते हैं, जिन्हें कम से कम 10 दिन का नोटिस देकर पूछा जाता है। इनका उत्तर भी मौखिक दिया जाता है।

मंत्रियों के अतिरिक्त प्राइवेट सदस्यों से भी प्रश्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार कोई प्रश्न किसी प्राइवेट सदस्य को भी सम्बोधित हो सकता है यदि प्रश्न की विषयवस्तु किसी विधेयक, संकल्प अथवा सदन की कार्यवाही से सम्बन्धित अन्य मामले से जुड़ी हो जिसके लिए सदस्य उत्तरदायी है। ऐसे प्रश्न से सम्बन्धित प्रक्रिया वैसी ही होगी जैसी कि किसी मंत्री से प्रश्न पूछने के लिए होती है।

तारांकित, अतारांकित, अल्प सूचना प्रश्न तथा प्राइवेट सदस्यों से प्रश्नों की सूची क्रमश: हरे, सफेद, हल्के गुलाबी तथा पीले रंग में छपी होती है ताकि वे एक-दूसरे से अलग दिखें।

शून्यकाल

प्रश्नकाल की तरह प्रक्रिया के नियमों में शून्यकाल का उल्लेख नहीं है। इस तरह यह अनौपचारिक साधन है, जिसमें संसद सदस्य बिना पूर्व सूचना के मामले उठा सकते हैं। शून्यकाल प्रश्नकाल के तुरंत बाद शुरू होता है और उइसे सदन के नियमित कार्य के कार्यकृत के साथ किया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रश्नकाल और कार्यक्रम तय करने के मध्य के समय को शून्यकाल कहते हैं। संसदीय प्रक्रिया में यह नवसार भारत की देन है तथा यह वर्ष 1962 से जारी है।

प्रस्ताव

लोक महत्व के किसी मामले पर बिना पीठासीन अधिकारी की स्वीकृति के बिना बहस नहीं की जा सकती। विभिन्न विषयों पर सदन अपना मत या निर्णय किसी मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा लाये गये प्रस्ताव को स्वीकृत या अस्वीकृत करके देता है।

सदस्यों द्वारा चर्चा के लिये लाये गये प्रस्तावों की तीन प्रमुख श्रेणियां हैं[14]:

1. **महत्वपूर्ण प्रस्ताव:** यह एक स्वयं वर्णित स्वतंत्र प्रस्ताव है जिसके तहत बहुत महत्वपूर्ण मामले जैसे राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग, मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हटाना आदि शामिल हैं।
2. **स्थानापन्न प्रस्ताव:** यह वह प्रस्ताव है, जो मूल प्रस्ताव का स्थान लेता है। यदि सदन इसे स्वीकार कर लेता है तो मूल प्रस्ताव स्थगित हो जाता है।
3. **पूरक प्रस्ताव:** यह ऐसा प्रस्ताव है, जिसका स्वयं कोई अर्थ नहीं होता। इसे सदन में तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक इसके मूल प्रस्ताव का संदर्भ न हो। इसकी तीन श्रेणियां होती हैं:
   (अ) *सहायक प्रस्ताव:* इसे नियमित प्रक्रिया के रूप में विभिन्न कार्यों के संपादन में इस्तेमाल किया जाता है।
   (ब) *स्थान लेने वाला प्रस्ताव:* इसे वाद-विवाद के दौरान किसी अन्य मामले के संबंध में लाया जाता है और यह उस मामले का स्थान लेने के लिए लाया जाता है।
   (स) *संशोधन:* यह मूल प्रस्ताव के केवल भाग को परिवर्तित या स्थान लेने के लिए लाया जाता है।

तालिका 22.2 *निंदा प्रस्ताव बनाम अविश्वास प्रस्ताव*

निंदा प्रस्ताव	अविश्वास प्रस्ताव
1. लोकसभा में इसे स्वीकारने का कारण बताना अनिवार्य है।	1. लोकसभा में इसे स्वीकार करने का कारण बताना आवश्यक नहीं है।
2. यह किसी एक मंत्री या मंत्रियों के समूह या पूरे मंत्रिपरिषद के विरुद्ध लाया जा सकता है।	2. यह सिर्फ पूरे मंत्रिपरिषद के विरुद्ध ही लाया जा सकता है।
3. यह मंत्रिपरिषद की कुछ नीतियों या कार्य के खिलाफ निंदा के लिए लाया जाता है।	3. यह मंत्रिपरिषद- में लोकसभा के विश्वास के निर्धारण हेतु लाया जाता है।
4. यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना आवश्यक नहीं है।	4. यदि यह लोकसभा में पारित हो जाए तो मंत्रिपरिषद को त्यागपत्र देना ही पड़ता है।

कटौती प्रस्ताव

यह प्रस्ताव किसी सदस्य द्वारा वाद-विवाद को समापत करने के लिए लाया जाता है। यदि प्रस्ताव स्वीकृत हो जाए तो वाद-विवाद को रोककर इसे मतदान के लिए रखा जाता है। सामान्यतया चार प्रकार के कटौती प्रस्ताव होते हैं[15]:

1. **साधारण कटौती:** यह वह प्रस्ताव होता है, जिसे किसी सदस्य की ओर से रखा जाता है कि इस मामले पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। अब इसे मतदान के लिए रखा जाए।
2. **घटकों में कटौती:** इस मामले में, किसी प्रस्ताव का चर्चा से पूर्व विधेयक या लंबे सकल्पों का एक समूह बना लिया जाता है। वाद-विवाद में इस भाग पर पूर्ण के रूप में चर्चा की जाती है और संपूर्ण भाग को मतदान के लिए रखा जाता है।
3. **कंगारू कटौती:** इस प्रकार के प्रस्ताव में, केवल महत्वपूर्ण खण्डों पर ही बहस और मतदान होता है और शेष खण्डों को छोड़ दिया जाता है और उन्हें पारित मान लिया जाता है।
4. **गिलोटिन प्रस्ताव:** जब किसी विधेयक या संकल्प के किसी भाग पर चर्चा नहीं हो पाती तो उस पर मतदान से पूर्व चर्चा कराने के लिये इस प्रकार का प्रस्ताव रखा जाता है।

विशेषाधिकार प्रस्ताव

यह किसी मंत्री द्वारा संसदीय विशेषधिकारों के उल्लंघन से संबंधित है। यह किसी सदस्य द्वारा पेश किया जाता है, जब सदस्य यह महसूस करता है कि सही तथ्यों को प्रकट नहीं कर या गलत सूचना देकर किसी मंत्री ने सदन या सदन के एक या अधिक सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया गया है। इसका उद्देश्य संबंधित मंत्री की निन्दा करना है।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

इस प्रस्ताव द्वारा, सदन का कोई सदस्य, सदन के पीठासीन अधिकारी की अग्रिम अनुमति से, किसी मंत्री का ध्यान अविलंबनीय लोक महत्व के किसी मामले पर आकृष्ट कर सकता है। शून्यकाल की तरह ही संसदीय प्रक्रिया में यह भारतीय नवाचार है, जो 1954 से अस्तित्व में है। शून्य काल से विपरीत प्रक्रिया नियमों में इसका उल्लेख है।

स्थगन प्रस्ताव

यह किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले पर सदन में चर्चा करने के लिए, सदन की कार्यवाही को स्थगित करने का प्रस्ताव है इसके लिए 50 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। यह प्रस्ताव, लोकसभा एवम् राज्य सभा दोनों में पेश किया जा सकता है। सदन का कोई भी सदस्य इस प्रस्ताव को पेश कर सकता है। स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा ढाई घंटे से कम की नहीं होती है। सदन की कार्यवाही के लिए स्थगन प्रस्ताव की निम्न सीमायें भी हैं-

1. इसके माध्यम से ऐसे मुद्दों को ही उठाया जा सकता है, जो कि निश्चित, तथ्यात्मक, अत्यंत जरूरी एवं लोक महत्व के हों।
2. इसमें एक से अधिक मुद्दों को शामिल नहीं किया जाता है।
3. इसके माध्यम से वर्तमान घटनाओं के किसी महत्वपूर्ण विषय को ही उठाया जा सकता है न कि साधारण महत्व के विषय को।

4. इसके माध्यम से विशेषाधिकार के प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता है।
5. इसके माध्यम से ऐसे किसी भी विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती है, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी है।
6. इसके माध्यम से किसी ऐसे विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती है, जो न्यायालय में विचाराधीन हो।
7. इसे किसी पृथक प्रस्ताव के माध्यम से उठाये गये विषयों को पुनः उठाने की अनुमति नहीं होती है।

अविश्वास प्रस्ताव

संविधान के अनुच्छेद 75 में कहा गया है कि मंत्रिपरिषद, लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। इसका अभिप्राय है कि मंत्रिपरिषद तभी तक है, जब तक कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, लोकसभा, मंत्रिमंडल को अविश्वास प्रस्ताव पारित कर हटा सकती है। प्रस्ताव के समर्थन में 50 सदस्यों की सहमति अनिवार्य है।

निंदा प्रस्ताव

निंदा प्रस्ताव अविश्वास प्रस्ताव से अलग है जैसा कि तालिका 22.2 में दर्शाया गया है।

धन्यवाद प्रस्ताव

प्रत्येक आम चुनाव के पहले सत्र एवं वित्तीय वर्ष के पहले सत्र में राष्ट्रपति सदन को संबोधित करता है। अपने संबोधन में राष्ट्रपति पूर्ववर्ती वर्ष और आने वाले वर्ष में सरकार की नीतियों एवं योजनाओं का खाका खींचता है। राष्ट्रपति के इस संबोधन को 'ब्रिटेन के राजा का भाषण' से लिया गया है, दोनों सदनों में इस पर चर्चा होती है। इसी को धन्यवाद प्रस्ताव कहा जाता है। बहस के बाद प्रस्ताव को मत विभाजन के लिए रखा जाता है। इस प्रस्ताव का सदन में पारित होना आवश्यक है। नहीं तो इसका तात्पर्य सरकार का पराजित होना है। राष्ट्रपति का यह प्रारंभिक भाषण सदस्यों को चर्चा तथा वाद-विवाद के मुद्दे उठाने और त्रुटियों और कमियों हेतु सरकार और प्रशासन की आलोचना का अवसर उपलब्ध कराता है।

अनियत दिवस

यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसे अध्यक्ष चर्चा के लिए बिना तिथि निर्धारित किए रखता है। अध्यक्ष सदन के नेता से चर्चा करके या सदन की कार्य मंत्रणा समिति की अनुशंसा से इस प्रकार के प्रस्ताव के लिये कोई दिन या समय नियत करता है।

औचित्य प्रश्न

जब सदन संचालन के सामान्य नियमों का पालन नहीं करता तो एक सदस्य औचित्य प्रश्न के माध्यम से सदन का ध्यान आकर्षित कर सकता है। यह सामान्यतया विपक्षी सदस्य द्वारा सरकार पर नियंत्रण के लिये उठाया जाता है। यह सदन का ध्यान आकर्षित करने की एक असाधारण युक्ति है क्योंकि यह सदन की कार्यवाही को समाप्त करती है। औचित्य प्रश्न में यद्यपि किसी तरह की बहस की अनुमति नहीं होती।

आधे घंटे की बहस

यह पर्याप्त लोक महत्व के मामलों आदि पर चर्चा के लिए है। अध्यक्ष ऐसी बहस के लिए सप्ताह में तीन दिन निर्धारित कर सकता है। इसके लिए सदन में कोई औपचारिक प्रस्ताव या मतदान नहीं होता।

अल्पकालिक चर्चा

इसे दो घंटे का चर्चा भी कहते हैं क्योंकि इस तरह की चर्चा के लिए दो घंटे से अधिक का समय नहीं लगता। संसद सदस्य किसी जरूरी सार्वजनिक महत्व के मामले को बहस के लिए रख सकते हैं। अध्यक्ष एक सप्ताह में इस पर बहस के लिए तीन दिन उपलब्ध करा सकता है।

विशेष उल्लेख

ऐसा मामला जो औचित्य प्रश्न नहीं है, उसे प्रश्नकाल के दौरान नहीं उठाया जाता, आधे घंटे की बहस जिसमें कई सारे मामले शामिल हैं, इसे विशेष उल्लेख के तहत राज्यसभा में उठाया जाता है। यह लोकसभा में नियम 377 के अधीन 'नोटिस' कहा जाता है।

संकल्प

साधारण लोक महत्व के मामलों पर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कोई सदस्य संकल्प ला सकता है किसी समय द्वारा प्रस्तावित संकल्प या संकल्प के संशोधन को सभा की अनुमति के बिना वापस नहीं किया जा सकता। संकल्पों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है[16]:

1. *गैर-सरकारी सदस्यों का संकल्पः* यह संकल्प गैर सरकारी द्वारा लाया जा सकता है। इस पर बहस केवल वैकल्पिक

तालिका 22.3 *सरकारी विधेयक बनाम गैर-सरकारी विधेयक*

सरकारी विधेयक	गैर-सरकारी विधेयक
1. इसे संसद में मंत्री द्वारा पेश किया जाता है।	1. इसे संसद में मंत्री के अलावा किसी भी सदस्य द्वारा पेश किया जाता है।
2. यह सरकार की नीतियों को प्रदर्शित करता है (सत्तारूढ़ दल)।	2. यह सार्वजनिक मामले पर विपक्षी दल के मंतव्य को प्रतिदर्शित करता है।
3. संसद द्वारा इसके पारित होने की पूरी उम्मीद होती है।	3. इसके संसद में पारित होने की कम उम्मीद होती है।
4. सदन द्वारा अस्वीकृत होने पर सरकार को इस्तीफा देना पड़ सकता है।	4. इसके अस्वीकृत होने पर सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
5. सदन में पेश करने के लिए सात दिनों का नोटिस होना चाहिए।	5. सदन में पेश करने के लिए ऐसे प्रस्ताव के लिए एक माह का नोटिस होना चाहिए।
6. इसे संबंधित विभाग द्वारा विधि विभाग के परामर्श से तैयार किया जाता है।	6. इसका निर्माण संबंधित सदस्य की जिम्मेदारी होती है।

शुक्रवार एवं दोपहर बाद बैठक में की जा सकती है।

2. *सरकारी संकल्प:* यह संकल्प मंत्री द्वारा लाया जा सकता है। इसे किसी भी दिन सोमवार से गुरुवार तक लाया जा सकता है।
3. *सांविधिक संकल्प:* इसे या तो गैर-सरकारी सदस्य द्वारा या मंत्री द्वारा लाया जा सकता है, इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे संविधान के उपबंध या अधिनियम के तहत लाया जा सकता है।

संकल्प प्रस्तावों से निम्नांकित संदर्भों में भिन्न होते हैं-सभी सकल्प महत्वपूर्ण प्रस्तावों की ही श्रेणी में आते हैं, इसका अर्थ है प्रत्येक संकल्प एक विशिष्ट प्रकार का प्रस्ताव होता है, यह अनिवार्य नहीं है कि सभी प्रस्ताव महत्वपूर्ण हो। इसके अतिरिक्त यह भी अनिवार्य नहीं है कि सभी प्रस्तावों को सभा की स्वीकृति के लिए रखा जाए, यद्यपि।[17]

युवा संसद

युवा संसद की योजना चौथे अखिल भारतीय व्हिप सम्मेलन की अनुशंसा पर प्रारंभ की गई। इसके उद्देश्य हैं:

1. यह युवा पीढ़ी को संसद की कार्यवाही से अवगत कराता है।
2. युवाओं के मस्तिष्क को अनुशासन एवं संबद्ध तथ्यों से परिचित कराता है।
3. यह छात्र समुदाय में लोकतंत्र के आधारभूत मूल्यों को समझाता है ताकि उन्हें लोकतांत्रिक संस्थानों के कार्य की सही जानकारी मिल सके।

इस योजना को समझाने के लिए संसदीय कार्य मंत्रालय, राज्यों को जरूरी प्रशिक्षण व योजना को लागू करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

संसद में विधायी प्रक्रिया

विधायी प्रक्रिया संसद के दोनों सदनों में संपन्न होती है। प्रत्येक सदन में हर विधेयक समान चरणों के माध्यम से पारित होता है।

संसद में पेश होने वाले विधेयक दो तरह के होते हैं— सरकारी विधेयक एवं गैर-सरकारी विधेयक (इन्हें क्रमश: सरकारी विधेयक एवं गैर सरकारी सदस्यों के विधेयक भी कहा जाता है) । यद्यपि दोनों समान प्रक्रिया के तहत सदन में पारित होते हैं किंतु उनमें विभिन्न प्रकार का अंतर होता है जैसा कि तालिका 22.3 में दर्शाया गया है।

संसद में प्रस्तुत विधेयकों को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **साधारण विधेयक:** वित्तीय विषयों के अलावा अन्य सभी विषयों से संबद्ध विधेयक साधारण विधेयक कहलाते हैं।
2. **धन विधेयक:** ये विधेयक वित्तीय विषयों, यथा—करारोपण, लोक व्यय इत्यादि से संबंधित होते हैं।

3. **वित्त विधेयक:** ये विधेयक भी वित्तीय विषयों से ही संबंधित होते हैं (परन्तु धन विधेयकों क्से भिन्न होते हैं)।
4. **संविधान संशोधन विधेयक:** ये विधेयक संविधान के उपबंधों में संशोधन से संबंधित होते हैं।

संविधान में सभी चारों प्रकार के विधेयकों के संबंध में अलग-अलग प्रकार की प्रक्रिया विहित की गयी है। यहां साधारण, वित्त एवं धन विधेयक से संबंधित प्रक्रिया का वर्णन किया जा रहा है। संविधान संशोधन विधेयक की चर्चा अध्याय 10 में की गयी है।

साधारण विधेयक

प्रत्येक साधारण विधेयक सांविधि पुस्तक में स्थान पाने से पूर्व संसद में निम्न पांच चरणों से गुजरता है:

1. **प्रथम पाठन:** साधारण विधेयक संसद के किसी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह विधेयक मंत्री या सदस्य किसी के द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जब कोई सदन सदस्य में यह विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे पहले सदन को इसकी अग्रिम सूचना देनी पड़ती है। जब सदन इस विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति दे देता है तो प्रस्तुतकर्ता इस विधेयक का शीर्षक एवं इसका उद्देश्य बताता है। इस चरण में विधेयक पर किसी प्रकार की चर्चा नहीं होती। बाद में इस विधेयक को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। यदि विधेयक प्रस्तुत करने से पहले ही राजपत्र में प्रकाशित हो जाये तो विधेयक के संबंध में सदन की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती[18]। विधेयक का प्रस्तुतीकरण एवं उसका राजपत्र में प्रकाशित होना ही प्रथम पाठन कहलाते हैं।
2. **द्वितीय पाठन:** इस चरण में विधेयक की न केवल सामान्य बल्कि विस्तृत समीक्षा की जाती है। इस चरण में विधेयक को अंतिम रूप प्रदान किया जाता है। विधेयक के प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। वास्तव में इस चरण के तीन उप-चरण होते हैं, जिनके नाम हैं—साधारण बहस की अवस्था, समिति द्वारा जांच एवं विचारणीय अवस्था।

   (अ) साधारण बहस की अवस्था: विधेयक की छपी हुयी प्रतियां सभी सदस्यों के बीच वितरित कर दी जाती हैं। सामान्यतया: विधेयक के सिद्धांत एवं उपबंधों पर चर्चा होती है। लेकिन विधेयक पर विस्तार से विचार-विमर्श नहीं किया जाता।

   इस चरण में, संसद निम्न चार में से कोई कदम उठा सकता है:

   (i) इस पर तुरंत चर्चा कर सकता है या इसके लिये कोई अन्य तिथि नियत कर सकता है।

   (ii) इसे सदन की प्रवर समिति को सौंपा जा सकता है।

   (iii) इसे दोनों सदनों की संयुक्त समीति को सौंपा जा सकता है। एवं

   (iv) इसे जनता के विचार जानने के लिये सार्वजनिक किया जा सकता है।

   प्रवर समिति में उस सदन के सदस्य होते है जहां, विधेयक लाया गया था और संयुक्त समिति में दोनों सदनों के सदस्य होते हैं।

   (ब) समिति अवस्था: सामान्यतया: विधेयक को सदन की एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाता है। यह समिति विस्तारपूर्वक विधेयक पर खण्डवार विचार करती है लेकिन वह इसके मूल विषय में परिवर्तन नहीं करती। समीक्षा एवं परिचर्चा के उपरांत समिति विधेयक को वापस सदन को सौंप देती है।

   (स) विचार-विमर्श की अवस्था: प्रवर समिति से विधेयक प्राप्त होने के उपरांत सदन द्वारा भी विधेयक के समस्त उपबंधों की समीक्षा की जाती है। विधेयक के प्रत्येक उपबंध पर खण्डवार चर्चा एवं मतदान होता है। इस अवस्था में सदस्य संशोधन भी प्रस्तुत कर सकते हैं, और यदि संशोधन स्वीकार हो जाते हैं तो वे विधेयक का हिस्सा बन जाते हैं।
3. **तृतीय पाठन:** इस चरण में केवल विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है तथा विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। यदि सदन का बहुमत इसे पारित कर देता है तो विधेयक पारित हो जाता है। इसके उपरांत उस सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा विधेयक पर विचार एवं स्वीकृति के लिये उसे दूसरे सदन में भेजा जाता है। दोनों सदनों द्वारा

पारित होने के उपरांत इसे संसद द्वारा पारित समझा जाता है।

4. **दूसरे सदन में विधेयक:** एक सदन से पारित होने के उपरांत दूसरे सदन में भी विधेयक का प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय पाठन होता है। इस संबंध में दूसरे सदन के समक्ष निम्न चार विकल्प होते हैं:
   (i) यह विधेयक को उसी रूप में पारित कर प्रथम सदन को भेज सकता है (अर्थात् बिना संशोधन के)।
   (ii) यह विधेयक को संशोधन के साथ पारित करके प्रथम सदन को पुन: विचारार्थ भेज सकता है।
   (iii) यह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है।
   (iv) यह विधेयक पर किसी भी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लंबित कर सकता है।

   यदि दूसरा सदन किसी प्रकार के संशोधन के साथ विधेयक को पारित कर देता है या प्रथम सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर लेता है तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है तथा इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेज दिया जाता है। दूसरी ओर, यदि द्वितीय सदन द्वारा किये गये संशोधनों को प्रथम सदन अस्वीकार कर देता है या द्वितीय सदन विधेयक को पूर्णरूपेण अस्वीकृत कर देता है या द्वितीय सदन छह मास तक कोई कार्यवाही नहीं करता तो गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस तरह के गतिरोध को समाप्त करने हेतु राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। यदि उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों का बहुमत इस संयुक्त बैठक में विधेयक को पारित कर देता है तो उसे दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

5. **राष्ट्रपति की स्वीकृति:** संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। इस समय राष्ट्रपति के समक्ष तीन प्रकार के विकल्प होते हैं:
   (अ) वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है,
   (ब) वह स्वीकृति देने हेतु विधेयक को रोक सकता है, या
   (स) वह पुनर्विचार हेतु विधेयक को सदन को वापस लौटा सकता है।

यदि राष्ट्रपति विधेयक को स्वीकृति दे देता है तो यह अधिनियम बन जाता है किंतु यदि राष्ट्रपति इसे अस्वीकार कर देता है तो यह निरस्त या समाप्त हो जाता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक को पुनर्विचार हेतु सदन को वापस भेजता है और सदन संशोधन के या बिना संशोधन किये उसे राष्ट्रपति को दोबारा भेजता है तो राष्ट्रपति इस पर सहमति देने हेतु बाध्य होता है। इस प्रकार राष्ट्रपति वास्तव में निबंलनकारी वीटो का ही प्रयोग कर सकता है[19]।

धन विधेयक

संविधान के अनुच्छेद 110 में धन विधेयक की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार कोई विधेयक तब धन विधेयक माना जायेगा, जब उसमें निम्न वर्णित एक या अधिक या समस्त उपबंध होंगे:

1. किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन,
2. केन्द्रीय सरकार द्वारा उधार लिये गये धन का विनियमन,
3. भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना।
4. भारत की संचित निधि से धन का विनियोग।
5. भारत की संचित निधि पर भारित किसी व्यय की उद्घोषणा या इस प्रकार के किसी व्यय की राशि में वृद्धि।
6. भारत की संचित निधि या लोक लेखें में किसी प्रकार के धन की प्राप्ति या अभिरक्षा या इनसे व्यय या इनका केन्द्र या राज्य की निधियों का लेखा परीक्षण, या
7. उपरोक्त विनिर्दिष्ट किसी विषय का आनुषंगिक कोई विषय।

यद्यपि कोई विधेयक केवल निम्न कारणों से धन विधेयक नहीं माना जायेगा कि वह:

1. जुर्मानों या अन्य धनीय शास्तियों का अधिरोपण करता है या
2. अनुज्ञप्तियों के लिए फीसों या की गई सेवाओं के लिए फीसों की मांग करता है, या
3. किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध करता है।

तालिका 22.4 *साधारण विधेयक बनाम धन विधेयक*

साधारण विधेयक	धन विधेयक
1. इसे लोकसभा या राज्यसभा में कहीं भी पुर: स्थापित किया जा सकता है।	1. इसे सिर्फ लोकसभा में पुर: स्थापित किया जा सकता है।
2. इसे या तो मंत्री द्वारा या गैर–सरकारी सदस्य द्वारा पुर: स्थापित किया जा सकता है।	2. इसे सिर्फ मंत्री द्वारा पुर: स्थापित किया जा सकता है।
3. यह बिना राष्ट्रपति की संस्तुति के पुर: स्थापित होता है।	3. इसे सिर्फ राष्ट्रपति की संस्तुति से ही पुर: स्थापित किया जा सकता है।
4. इसे राज्यसभा द्वारा संशोधित या अस्वीकृत किया जा सकता है।	4. इसमें राज्यसभा कोई संशोधन या अस्वीकृति नहीं दे सकती।
5. इसे राज्यसभा अधिकतम छह माह के लिए रोक सकती है।	5. इसे राज्यसभा अधिकतम 14 दिन के लिए रोक सकती है।
6. इसे राज्यसभा में भेजने के लिए अध्यक्ष के प्रमाणन की जरूरत नहीं होती।	6. इसे अध्यक्ष के प्रमाणन की जरूरत होती है।
7. इसे दोनों सदनों से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है। असहमति की अवस्था में राष्ट्रपति संयुक्त बैठक बुला सकता है।	7. इसे सिर्फ लोकसभा से पारित होने के बाद राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है। इसमें दोनों सदनों के बीच अहसमति का कोई अवसर ही नहीं होता। इसलिए संयुक्त बैठक का कोई उपबंध नहीं है।
8. इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्यागपत्र देना पड़ सकता है। (यदि इसे मंत्री ने पुर:स्थापित किया हो।)	8. इसके लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।
9. इसे अस्वीकृत, पारित या राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए भेजा जा सकता है।	9. इसे अस्वीकृत या पारित तो किया जा सकता है, लेकिन राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटाया नहीं जा सकता है।

धन विधेयक के संबंध में लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम निर्णय होता है। उसके निर्णय को किसी न्यायालय, संसद या राष्ट्रपति द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। जब धन विधेयक राज्यसभा एवं राष्ट्रपति के पास स्वीकृति हेतु जाता है तो लोकसभा अध्यक्ष इसे धन विधेयक के रूप में पृष्ठांकन करता है।

संविधान में संसद द्वारा धन विधेयक को पारित करने के संबंध में एक विशेष प्रक्रिया विहित है। धन विधेयक केवल लोकसभा में केवल राष्ट्रपति की सिफारिश से ही प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रत्येक विधेयक को सरकारी विधेयक माना जाता है तथा इसे केवल मंत्री ही प्रस्तुत कर सकता है।

लोकसभा में पारित होने के उपरांत इसे राज्यसभा के विचारार्ध भेजा जाता है। राज्य सभा के पास धन विधेयक के संबंध में प्रतिबंधित शक्तियां है। यह धन विधेयक को अस्वीकृत या संशाधित नहीं कर सकती। यह केवल सिफारिश कर सकती है। 14 दिन के भीतर उसे इस पर स्वीकृति देनी होती है अन्यथा वह राज्यसभा द्वारा पारित समझा जाता है। लोकसभा के लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वह राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार ही करे।

यदि लोकसभा किसी प्रकार की सिफारिश को मान लेती है तो फिर इस संशोधित विधेयक को दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से पारित समझा जाता है। लेकिन यदि लोकसभा किसी प्रकार की सिफारिश को नहीं मानती है तो फिर इसे मूल रूप में दोनों सदनों द्वारा संयुक्त रूप से पारित समझा जाता है।

यदि राज्यसभा इस विधेयक को 14 दिन तक वापस नहीं करती तो वह वह दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। धन विधेयक के संबंध में राज्यसभा की शक्ति काफी सीमित है। दूसरी ओर साधारण विधयेकों के मामले में दोनों सदनों को समान शक्ति प्रदान की गयी है।

अंतत: जब धन विधेयक को राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है तो वह या तो इस पर अपनी स्वीकृति दे देता है या फिर इसे रोककर रख सकता है लेकिन वह किसी भी दशा में इसे विचार के लिये वापस नहीं भेज सकता है। सामान्यतया लोकसभा में प्रस्तुत करने से पहले जब राष्ट्रपति की सहमति ली जाती है तो यह माना जाता है कि राष्ट्रपति इससे सहमत हैं तथा वे इस पर सहमति दे भी

देते हैं। तालिका 24.4 में साधारण विधयेक एवं धन विधेयक की तुलना की गयी है।

वित्त विधेयक

साधारणतया वित्त विधेयक, उस विधेयक को कहते हैं, जो वित्तीय मामलों जैसे राजस्व या-व्यय से संबंधित होता है। इसमें आगामी वित्तीय वर्ष में किसी नये प्रकार के कर लगाने या कर में संशोधन आदि से संबंधित विषय शामिल होते हैं। वित्त विधेयक निम्न तीन प्रकार के होते हैं:

1. धन विधेयक - अनुच्छेद 110
2. वित्त विधेयक (I) - अनुच्छेद 117(1)
3. वित्त विधेयक (II) - अनुच्छेद 117 (3)

इस वर्गीकरण के अनुसार, सभी धन विधेयक, वित्त विधेयकों की श्रेणी में आते हैं। यद्यपि सभी धन विधेयक, वित्त विधेयक होते हैं किंतु सभी वित्त विधेयक, धन विधेयक नहीं होते हैं। केवल वे वित्त विधेयक ही धन विधेयक होते हैं, जिनका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 110 में किया गया है। धन विधेयक को लोकसभाध्यक्ष द्वारा भी धन विधेयक के रूप में प्रमाणित किया जाता है। वित्त विधेयक-I तथा II की चर्चा संविधान के अनुच्छेद 117 में की गयी है।

वित्त विधेयक (I) एक वित्त विधेयक (I) वह विधेयक है, जिसमें अनुच्छेद 110 में उल्लिखित सभी मामले होते हैं। इसके अलावा अन्य आय मामले भी, जैसे एक विधेयक, जिसमें ऋण संबंधी खण्ड हो लेकिन वह विशिष्ट: ऋण से संबद्वन हो वित विधेयक (I) दो रूपों में धन विधेयक के समान है। (अ) दोनों लोकसभा में पेश किए जाते हैं, (ब) दोनों राष्ट्रपति की सहमति के बाद पेश किए जा सकते है। अन्य सभी मामलों में एक वित्त विधेयक (I) वह विधेयक है, जिसे उसी प्रकार व्यवहृत किया जाता है, जैसे कि साधारण विधेयक। तथापि इसे राज्यसभा द्वारा स्वीकार या अस्वीकार किया जा सकता है (हालांकि इस संबंध में किसी भी सदन द्वारा विधेयक में प्रस्तावित कर आदि को तब तक कम या समाप्त नहीं किया जा सकता है, जब तक कि राष्ट्रपति इसकी सहमति न दे दे। यदि इस प्रकार के विधेयक में दोनों सदनों के बीच कोई गतिरोध होता है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों के गतिरोध को समाप्त करने के लिये संयुक्त बैठक बुला सकता है। जब विधेयक राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है, तो वह या तो विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है या उसे रोक सकता है या फिर पुनर्विचार के लिये सदन को वापस कर सकता है।

वित्त विधेयक (II) एक वित्त विधेयक (II) में भारत की संचित निधि पर भारित व्यय संबंधी उपबंध होते हैं लेकिन इसमें वह कोई मामला नहीं होता, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 110 में होता है। इसे साधारण विधेयक की तरह प्रयोग किया जाता है तथा इसके लिये भी वही प्रक्रिया अपनायी जाती है, जो साधारण विधेयक के लिये अपनायी जाती है। इस विधेयक की एकमात्र प्रमुख विशेषता यह है कि सदन के किसी भी सदन द्वारा इसे तब तक पारित नहीं किया जा सकता, जब तक कि राष्ट्रपति सदन को ऐसा करने की अनुशंसा न दे दे। वित्त विधेयक (II) को संसद के किसी भी सदन में पुन: स्थापित किया जा सकता है, तथा इसे प्रस्तुत करने के लिये राष्ट्रपति की सहमति की आवश्यकता नहीं होती है। दोनों ही सदन इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। यदि इस प्रकार के विधेयक में दोनों सदनों के बीच कोई गतिरोध होता है तो राष्ट्रपति दोनों सदनों के गतिरोध को समाप्त करने के लिये संयुक्त बैठक बुला सकता है। जब विधेयक राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है, तो वह या तो विधेयक को अपनी स्वीकृति दे सकता है या उसे रोक सकता है या फिर पुनर्विचार के लिये सदन को वापस कर सकता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक

किसी विधेयक पर गतिरोध की स्थिति में संविधान द्वारा संयुक्त बैठक की एक असाधारण व्यवस्था की गई है। यह निम्नलिखित तीन में से किसी एक परिस्थिति में बुलाई जाती है जब एक सदन द्वारा विधेयक पारित कर दूसरे को भेजा जाता है:

1. यदि विधेयक को दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया।
2. यदि सदन विधेयक में किए गए संशोधनों को मानने से असहमत हो। या
3. दूसरे सदन द्वारा बिना विधेयक को पास किए 6 महीने से ज्यादा समय हो जाए।

उपरोक्त तीन परिस्थितियों में विधेयक को निपटाने और इस पर चर्चा करने और मत देने के लिए राष्ट्रपति दोनों सदनों की बैठक बुलाता है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त बैठक साधारण विधेयक या वित्त विधेयक के मामलों में ही आहूत की जा सकती है तथा धन विधेयक या संविधान संशोधन विधेयक के बारे में इस प्रकार की संयुक्त बैठक आहूत करने की कोई व्यवस्था नहीं है। धन विधेयक के मामले में सम्पूर्ण शक्तियां लोकसभा को हैं, जबकि

संविधान संशोधन विधेयक के बारे में विधेयक को दोनों सदनों से अलग-अलग पारित होना आवश्यक है।

छह माह की अवधि में उस समय को नहीं गिना जाता जब अन्य सदन में चार क्रमिक दिनों हेतु सत्रावसान या स्थगन रहा हो।

यदि कोई विधेयक लोकसभा विघटन होने के कारण छूट जाता है तो संयुक्त बैठक नहीं बुलायी जा सकती है। लेकिन संयुक्त बैठक तब बुलायी जा सकती है, जब राष्ट्रपति इस प्रकार की बैठक की नोटिस देते हैं जो लोक सभा विघटन से पूर्व जारी कर दिया गया हो। राष्ट्रपति द्वारा इस प्रकार का नोटिस देने के बाद कोई भी सदन इस विधेयक पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है।

दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष करता है तथा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष यह दायित्व निभाता है। यदि उपाध्यक्ष भी अनुपस्थित हो तो राज्यसभा का उपसभापति यह दायित्व निभाता है। यदि राज्यसभा का उपसभापति भी अनुपस्थित हो तो संयुक्त बैठक में उपस्थिति सदस्यों द्वारा इस बात का निर्णय किया जाता है कि इस संयुक्त बैठक की अध्यक्षता कौन करेगा। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि साधारण स्थिति में इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता राज्यसभा का सभापति नहीं करता क्योंकि वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है।

इस संयुक्त बैठक का कोरम दोनों सदनों की कुल सदस्य संख्या का 1-10 भाग होता है। संयुक्त बैठक की कार्यवाही लोकसभा के प्रक्रिया नियमों के अनुसार संचालित होती है, न कि राज्यसभा के नियमों के अनुसार।

यदि विवादित विधेयक को इस संयुक्त बैठक में दोनों सदनों के उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों की संख्या के बहुमत से पारित कर दिया जाता है तो यह माना जाता है कि विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया है। सामान्यतया लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण इस संयुक्त बैठक में उसकी शक्ति ज्यादा होती है।

संविधान में यह उपबंध है कि इस संयुक्त बैठक में कोई भी संशोधन केवल दो परिस्थितियों के अलावा नहीं किया जा सकता है:

1. वे संशोधन जिनके बारे में दोनों सदन अंतिम निर्णय न ले पाये हों, तथा
2. वे संशोधन जो इस विधेयक के पारित होने में विलंब कारणों से अनिवार्य हो गए हों।

1950 से दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों को तीन बार बुलाया गया। विधेयक, जो संयुक्त बैठक द्वारा पारित हुए, वे हैं:

1. दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1960[20]।
2. बैंक सेवा आयोग विधेयक, 1977[21]।
3. आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002[22]।

संसद में बजट

संविधान ने बजट को 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा है। दूसरे शब्दों में, 'बजट' शब्द का संविधान में कही उल्लेख नहीं है। यह 'वार्षिक वित्तीय विवरण' का प्रचलित नाम है तथा इसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 112 में किया गया है।

इसमें वित्तीय वर्ष के दौरान भारत सरकार के अनुमानित प्राप्तियों और खर्च का विवरण होता है, जो 1 अप्रैल से प्रारंभ होकर 31 मार्च तक होता है। बजट में निम्नलिखित शामिल हैं:

1. राजस्व एवं पूंजी की अनुमानित प्राप्तियां।
2. राजस्व बढ़ाने के उपाद एवं साधन।
3. खर्च का अनुमान।
4. वास्तविक प्राप्तियां एवं खर्च का विवरण।
5. आने वाले साल के लिए आर्थिक एवं वित्तीय नीति, कर व्यवस्था खर्च की योजना एवं नयी परियोजना।

भारत सरकार के दो बजट होते हैं, रेलवे बजट और आम बजट। पहले बजट में सिर्फ रेलवे मंत्रालय का आय-व्यय शामिल होता है, जबकि आम बजट में भारत सरकार के सभी मंत्रालयों (रेलवे के आय-व्यय को छोड़कर) के आय-व्यय का विवरण होता है। रेलवे बजट को आम बजट से एकवर्थ समिति की सिफारिश पर 1921 में पृथक् किया गया था। इसके कारण निम्नलिखित हैं:

1. रेल वित्त में लचीलापन लाना।
2. रेलवे को नीति-निर्धारण के अवसर उपलब्ध कराना।
3. रेलवे राजस्व से सुनिश्चित वार्षिक अंशदान उपलब्ध कराकर सामान्य राजस्वों की सततता सुनिश्चित करना।
4. रेलवे को अपने विकास के लिए कार्यरत करना (साधारण राजस्व को नियत वार्षिक भाग अदा करने के बाद)।

अगस्त 2016 में केन्द्र सरकार ने रेलवे बजट को केन्द्रीय बजट में समाहित करने का निश्चत किया। इस उद्देश्य से वित्त मंत्रालय ने एक पांच सदस्यीय समिति का गठन किया जिसमें

दोनों मंत्रालयों के अधिकारी होंगे और जो विलय को संभव बनाने के लिए कार्य करेंगे। एक अलग रेलवे बजट की सालों पुरानी परम्परा को छोड़ना मोदी सरकार के सुधार-एजेंडा का ही एक हिस्सा है।

संवैधानिक उपबंध

संविधान में बजट के क्रियान्वयन को लेकर निम्नलिखित व्यवस्थाएं उल्लिखित हैं:

1. राष्ट्रपति इसे हर वित्त वर्ष में संसद के दोनों सदनों में पेश करवाएगा।
2. बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई अनुदान की मांग नहीं की जाएगी।
3. समेकित विधि निर्मित विनियोग के भारत की संचित निधि से कोई धन नहीं निकाला जाएगा।
4. बिना राष्ट्रपति के संस्तुति के कर निर्धारण वाला कोई विधेयक संसद में पुर:स्थापित नहीं होगा। इस तरह के किसी विधेयक को राज्यसभा में पुर:स्थापित नहीं किया जाएगा।
5. विधि प्राधिकृत के सिवाए किसी कर की उगाही या संग्रहण नहीं किया जाएगा।
6. संसद किसी कर को कम या समाप्त कर सकती है लेकिन इसे बढ़ा नहीं सकती।
7. संविधान में संसद के दोनों सदनों की बजट के संबंध में संबंधित भूमिका को भी निम्नलिखित मामलों से व्याख्यित किया गया है:
   (अ) धन विधेयक या वित्त विधेयक को राज्यसभा में पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता। इसे केवल लोकसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है।
   (ब) राज्यसभा को अनुदान मांग पर मतदान की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। यह लोकसभा को प्राप्त विशेष सुविधा है।
   (स) राज्यसभा को 14 दिन में धन विधेयक लोकसभा को लौटा देना चाहिए। लोक सभा इस संबंध में राज्यसभा द्वारा की गई सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है।
8. बजट में व्यय अनुमान को भारत की संचित विधि पर भारित व्यय और भारत की संचित निधि से किए गए व्यय को पृथक्-पृथक् दिखाना चाहिए।
9. बजट राजस्व खाते से व्यय और अन्य व्ययों को पृथक् दिखाएगा।
10. भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) पर चार्ज किया गया खर्च संसद में मत के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाएगा। हालांकि इस पर संसद में चर्चा हो सकती है।

भारित व्यय

बजट में दो प्रकार के व्यय शामिल होते हैं-भारत की संचित निधि पर भारित व्यय एवं भारत की संचित निधि से किये गए व्यय। भारित व्ययों के संबंध में सदन में मतदान नहीं होता है, अर्थात् इस पर केवल चर्चा होती है जबकि अन्य प्रकार पर मतदान कराया जाता है। भारित व्ययों की सूची निम्नानुसार है:

1. राष्ट्रपति की परिलब्धियां एवं भत्ते तथा उसके कार्यालय के अन्य व्यय।
2. उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, राज्यसभा के उपसभापति लोकसभा के उपाध्यक्ष के वेतन एवं भत्ते।
3. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
4. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पेंशन।
5. भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
6. संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन।
7. उच्चतम न्यायालय, भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय एवं संघ लोक सेवा आयोग के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनमें इन कार्यालयों में कार्यरत कर्मिकों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन भी शामिल होते हैं।
8. ऐसे ऋण भार, जिनका दायित्व भारत सरकार पर है, जिनके अंतर्गत ब्याज, निक्षेप, निधि भार और मोचन

भार तथा उधार लेने और ऋण सेवा और ऋण मोचन से संबंधित अन्य व्यय हैं,

9. किसी न्यायालय या माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय, डिक्री या पंगर की तुष्टि के लिए अपेक्षित राशियां।
10. संसद द्वारा विहित कोई अन्य व्यय।

पारित होने की प्रक्रिया

संसद में बजट निम्नलिखित 6 स्तरों से गुजरता है:

1. बजट का प्रस्तुतिकरण।
2. आम बहस।
3. विभागीय समितियों द्वारा जांच।
4. अनुदान की मांग पर मतदान।
5. विनियोग विधेयक का पारित होना।
6. वित्त विधेयक का पारित होना।

1. बजट का प्रस्तुतिकरण: बजट दो रूपों में प्रस्तुत किया जाता है-रेलवे बजट और आम बजट। दोनों के लिये एक समान प्रक्रिया अपनायी जाती है।

रेल बजट, आम बजट से पहले पेश किया जाता है। लोकसभा में रेल मंत्रालय द्वारा फरवरी के तीसरे सप्ताह में बजट पेश किया जाता है और आम बजट को वित्त मंत्री द्वारा फरवरी माह के अंतिम कार्य दिवस को पेश किया जाता है।

आम बजट को प्रस्तुत करते समय वित्त मंत्री सदन में जो भाषण देता है, उसे बजट भाषण कहते हैं। लोकसभा में भाषण के अंत में मंत्री बजट प्रस्तुत करता है। राज्यसभा में इसे बाद में पेश किया जाता है। राज्यसभा को अनुदान मांगों पर कटौती का कोई अधिकार नहीं होता है।

2. आम बहस: साधारण बजट को प्रस्तुत करने की तिथी के कुछ दिन बाद तक बजट पर आम बहस चलती रहती है। दोनों सदन इस पर तीन से चार दिन बहस करते हैं। इस चरण में लोकसभा इसके पूरे या आंशिक भाग पर चर्चा कर सकती है इससे संबंधित प्रश्नों को उठाया जा सकता है। बहस के अंत में वित्त मंत्री को अधिकार है कि वह इसका जवाब दे।

3. विभागीय समितियों द्वारा जांच: बजट पर आम बहस पूरी होने के बाद सदन तीन या चार हफ्तों के लिए स्थगित हो जाता है। इस अंतराल के दौरान संसद की स्थायी समितियां[24] अनुदान की मांग आदि की विस्तार से पड़ताल करती हैं और एक रिपोर्ट तैयार करती हैं। इन रिपोर्टों को दोनों सदनों में विचारार्थ रखा जाता है।

स्थायी समिति की यह व्यवस्था 1993 (वर्ष 2004 में इसे विस्तृत किया गया) से शुरू की गई। यह व्यवस्था विभिन्न मंत्रालयों पर संसदीय वित्तीय नियंत्रण के उद्देश्य से प्रारंभ की गयी थी।

4. अनुदान की मांगों पर मतदान: विभागीय स्थायी समितियों के आलोक में लोकसभा में अनुदान की मांगों के लिए मतदान होता है। मांगें मंत्रालयवार प्रस्तुत की जाती हैं। पूर्ण मतदान के उपरांत एक मांग, अनुदान बन जाती है।

इस संदर्भ में दो बिंदु उल्लेखनीय हैं—एक, अनुदान के लिए मतदान लोकसभा की विशेष शक्ति है, जो कि राज्यसभा के पास नहीं है। दूसरा, राज्यसभा को मतदान का अधिकार बजट के मताधिकार वाले हिस्से पर ही होता है तथा इसमें भारत की संचित निधि पर भारित व्यय शामिल नहीं होते हैं (इस पर केवल चर्चा की जा सकती है)।

आम बजट में 109 मांगें (103 आम नागरिक प्रशासन एवं 6 सेना के खर्च) होती हैं, जबकि रेल बजट में 32 मांगें होती हैं। प्रत्येक मांग पर लोकसभा में अलग से मतदान होता है। इस दौरान संसद सदस्य इस पर बहस करते हैं। सदस्य अनुदान मांगों पर कटौती के लिये प्रस्ताव भी ला सकते हैं। इस प्रकार के प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहा जाता है, जिनके तीन प्रकार होते हैं:

(अ) ***नीति कटौती प्रस्ताव*** यह मांग की नीति के प्रति असहमति को व्यक्त करता है। इसमें कहा जाता है कि मांग की राशि 1 रुपये कर दी जाये। सदस्य कोई वैकल्पिक नीति भी पेश कर सकते हैं।

(ब) आर्थिक कटौती प्रस्ताव इसमें इस बात का उल्लेख होता है कि प्रस्तावित व्यय से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। इसमें कहा जाता है कि मांग की राशि को एक निश्चित सीमा तक कम किया जाये (यह या तो मांग में एकमुश्त कटौती हो सकती है या फिर पूर्ण समाप्ति या मांग की किसी मद में कटौती)।

(स) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव यह भारत सरकार के किसी दायित्व से संबंधित होता है। इसमें कहा जाता है कि मांग में 100 रुपये की कमी की जाये।

एक कटौती प्रस्ताव में स्वीकृत के लिए निम्न दशायें अवश्य होनी चाहिये:

1. यह केवल एक प्रकार की मांग से संबंधित होना चाहिये।
2. इसका स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये तथा इसमें किसी प्रकार की अनावश्यक बात नहीं होनी चाहिये।
3. यह केवल एक मामले से ही संबंधित होनी चाहिये।
4. इसमें संशोधन संबंधी या वर्तमान नियम को परिवर्तित करने संबंधी कोई सुझाव नहीं होना चाहिये।
5. इसमें संघ सरकार के कार्य क्षेत्र बाहर किसी विषय का उल्लेख नहीं होना चाहिये।
6. इसमें भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित कोई विषय नहीं होना चाहिये।
7. इसमें किसी न्यायालयीन प्रकरण का उल्लेख नहीं होना चाहिये।
8. इसके द्वारा विशेषाधिकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।
9. इसमें पुनर्परिचर्चा का कोई विषय नहीं होना चाहिये, जिसके बारे में इसी सत्र में पहले से ही कोई निर्णय लिया जा चुका हो।
10. यह अनावश्यक विषय से संबंधित नहीं होनी चाहिये।

एक कटौती प्रस्ताव का महत्व इस बात में है कि-(अ) अनुदान मांगों पर चर्चा का अवसर एवं (ब) उत्तरदायी सरकार के सिद्धांत को कायम रखने के लिए सरकार के कार्यकलापों की जांच करना। हालांकि, कटौती प्रस्ताव की प्रायोगिक रूप से ज्यादा उपयोगिता नहीं है। ये केवल सदन में लाये जाते हैं तथा इन पर चर्चा होती है लेकिन सरकार का बहुमत होने के कारण इन्हें पास नहीं किया जा सकता। ये केवल कुछ हद तक सरकार पर अंकुश लगाते हैं।

अनुदान मांगों पर मतदान के लिये कुल 26 दिन निर्धारित किये गये हैं। अंतिम दिन अध्यक्ष सभी शेष मांगों को मतदान के लिये पेश करता है तथा उनका निपटान करता है फिर चाहे सदस्यों द्वारा इन पर चर्चा की गयी हो या नहीं। इसे गिलोटिन के नाम से जाना जाता है।

5. विनियोग विधेयक का पारित होना: संविधान में व्यवस्था की गई है कि भारत की संचित निधि से विधि सम्मत विनियोग के सिवाए धन की निकासी नहीं होगी, तदनुसार भारत की निधि से विनियोग के लिए एक विनियोग विधेयक पुर:स्थापित किया जाता है, ताकि धन को निम्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयुक्त किया जाए:

(अ) लोकसभा में मत द्वारा दिये गये अनुदान। तथा

(ब) भारत की संचित निधि पर भारित व्यय।

विनियोग विधेयक की रकम में परिवर्तन करने या अनुदान के लक्ष्य को बदलने अथवा भारत की संचित निधि पर भारित व्यय की रकम में परिवर्तन करने का प्रभाव रखने वाला कोई संशोधन, संसद के किसी सदन में प्रख्यापित नहीं किया जाएगा।

इस मामले में राष्ट्रपति की सहमति के उपरांत ही कोई अधिनियम बनाया जा सकता है। इसके बाद ही संचित

निधि से किसी प्रकार के धन की निकासी की जा सकती है। इसका अर्थ है कि, विनियोग विधेयक के लागू होने तक सरकार भारत की संचित निधि से कोई धन आहरित नहीं कर सकती है। इसमें काफी समय लगता है तथा यह अप्रैल तक खिंच जाता है। लेकिन सरकार को 31 मार्च के बाद विभिन्न कार्यों के लिये धन की आवश्यकता होती है। इस स्थिति से निपटने के लिये संविधान द्वारा लोकसभा को यह शक्ति दी गयी है कि वह इस प्रकार के आवश्यक कार्यों के लिये विशेष प्रयासों के माध्यम से धन का आहरण कर सकती है। इसे लेखानुदान के नाम से जाना जाता है। इसे बजट पर आम बहस के उपरांत पारित किया जाता है। इसमें सामान्यतः कुल अनुमान के 1-6 भाग के बराबर को दो माह के व्यय हेतु स्वीकृति दी जाती है।

6. **वित्त विधेयक का पारित होना:** वित्त विधेयक भारत सरकार के उस वर्ष के लिए वित्तीय प्रस्तावों को प्रभावी करने के लिए पुर:स्थापित किया जाता है। इस पर धन विधेयक की सभी शर्तें लागू होती हैं। वित्त विधेयक में विनियोग विधेयक के विपरीत संशोधन (कर को बढ़ाने या घटाने के लिए) प्रस्तावित किए जा सकते हैं।

   अनन्तिम कर संग्रहण अधिनियम, 1931 के अनुसार, वित्त विधेयक को 75 दिनों के भीतर प्रभावी हो जाना चाहिए। वित्त अधिनियम बजट के आय पक्ष को विधिक मान्यता प्रदान करता है और बजट को प्रभावी स्वरूप देता है।

अन्य अनुदान

बजट जिसमें एक वित्तीय वर्ष हेतु आय और व्यय का सामान्य अनुमान होता है, के अतिरिक्त संसद द्वारा असाधारण या विशेष परिस्थितियों में अनेक अन्य अनुदानें भी दी जाती हैं।

अनुपूरक अनुदान: इसे संसद द्वारा तब स्वीकृत किया जाता है, जब किसी विशेष सेवा हेतु विनियोग अधिनियम द्वारा प्राधिकृत राशि उस वर्ष हेतु चालू वित्तीय वर्ष में अप्रर्याप्त पाई जाए।

अतिरिक्त अनुदान: यह तब प्रदान की जाती है, जब उस वर्ष हेतु बजट में किसी नई सेवा के संबंध में व्यय परिकल्पित न किया गया हो और चालू वित्तीय वर्ष के दौरान अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता उत्पन्न हो गई हो।

अधिक अनुदान: इस प्रकार की मांग तब रखी जाती है, जब उस वर्ष के बजट में उस सेवा के लिये निर्धारित रकम से ज्यादा रकम व्यय हो जाती है। वित्त वर्ष के उपरांत इस पर लोकसभा में मतदान होता है। इस प्रकार की मांग को लोकसभा में मतदान के लिये प्रस्तुत करने से पहले इसे संसद की लोक लेखा समिति से मंजूरी मिलना अनिवार्य होता है।

प्रत्ययानुदान: जब किसी सेवा या मद के लिये आकस्मिक रूप से धन की अत्यधिक एवं तुरंत सहायता आवश्यक होती है तो इस प्रकार की अनुदान मांग रखी जाती है। यह कहा जा सकता है कि यह लोकसभा द्वारा कार्यपालिका को दिया गया ब्लैंक चेक होता है।

अपवादानुदान: इसे विशेष प्रायोजन के लिये मंजूर किया जाता है तथा यह वर्तमान वित्तीय वर्ष या सेवा से संबंधित नहीं होती है।

सांकेतिक अनुदान: यह अनुदान तब रखी जाती है, जब पहले से प्रस्तावित किसी सेवा के अतिरिक्त सेवा के लिये धन की आवश्यकता होती है। इसके लिये लोकसभा में प्रस्ताव रखा जाता है तथा उस पर मतदान होता है फिर धन की व्यवस्था की जाती है। यह किसी अतिरिक्त व्यय से संबंधित नहीं होती है।

अनुपूरक, अतिक्ति, असाधाारण अनुदान एवं वोट ऑफ क्रेडिट के लिये उसी प्रकार की प्रक्रिया अपनायी जाती है, जैसी की साधारण बजट के लिये अपनायी जाती है।

निधियां

भारत का संविधान केंद्र सरकार के लिए निम्नलिखित तीन प्रकार की निधियों की व्यवस्था करता है:

1. भारत की संचित निधि (अनुच्छेद 266)।
2. भारत का लोकलेखा (अनुच्छेद 266)।
3. भारत की आकस्मिकता निधि (अनुच्छेद 267)।

भारत की संचित निधि: यह एक ऐसी निधि है, जिसमें से सभी प्राप्तियां उधार ली जाती हैं और भुगतान जमा किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, (क) भारत सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व, (ख) राजकोष विधेयकों, ऋणों या अर्थोपाय अग्रिमों को जारी केंद्र सरकार द्वारा लिए गए सभी ऋण। (ग) ऋणों की पुनर्अदायगी में सरकार द्वारा प्राप्त धनराशि, भारत की संचित निधि का भाग होगी। भारत सरकार की ओर से विधिक प्राधिकृत सभी भुगतान इसी निधि में से

किए जायेंगे। इस निधि में से किसी भी धन को संसदीय विधि के सिवाए विनियोजित (जारी या निकाली) नहीं किया जा सकता।

भारत का लोक लेखा: सभी अन्य सार्वजनिक धन (भारत की संचित निधि से ऋण के अलावा) भारत सरकार या उसके लिए भारत के लोक लेखा में से ऋण लिया जाता है। इसमें भविष्य निधि जमा, न्यायिक जमा, बचत, बैंक जमा, विभागीय जमा आदि शामिल हैं। इस लेखे को कार्यकारी प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित किया जाता है। अर्थात् इस खाते से भुगतान संसदीय विनियोजन के बिना किया जा सकता है। इस प्रकार के भुगतान मुख्यतया बैंक आदान-प्रदान से संबंधित होते हैं।

भारत की आकस्मिकता निधि: संविधान संसद को 'भारत की आकस्मिक निधि' के गठन की अनुमति देता है। इसमें समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित निधियां प्राप्त की जाती हैं। संसद द्वारा 'भारत की आकस्मिक निधि' अधिनियम 1950 से शुरू हुआ। निधि को राष्ट्रपति की ओर से वित्त सचिव द्वारा रखा जाता है। यह निधि राष्ट्रपति के अधिकार में रहती है और वह किसी अप्रत्याशित व्यय के लिए इससे अग्रिम दे सकता है, जिसे बाद में संसद द्वारा प्राधिकृत करवाया जा सकता है। भारत के लोक लेखा की तरह इसे कार्यकारी प्रक्रिया से संचालित किया जाता है।

संसद की बहुक्रियात्मक भूमिका

भारतीय राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में संसद एक केंद्रीय स्थिति रखती है और उसकी बहुक्रियात्मक भूमिका होती है। इसे विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। इसकी शक्तियों एवं कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. विधायी शक्तियां एवं कार्य
2. कार्यकारी शक्तियां एवं कार्य
3. वित्तीय शक्तियां एवं कार्य
4. सांविधिक शक्तियां एवं कार्य
5. न्यायिक शक्तियां एवं कार्य
6. निर्वाचक शक्तियां एवं कार्य
7. अन्य शक्तियां एवं कार्य

1. विधायी शक्तियां एवं कार्य

संसद का प्राथमिक कार्य देश के संचालन के लिए विधियां बनाना है। इसके पास संघ सूची विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 97 एवं वर्तमान में 99 विषय हैं) तथा अवशिष्ट विषयों (वे विषय जो किसी भी सूची में शामिल नहीं हैं) पर विधि बनाने का विशिष्ट अधिकार है। यदि दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य किसी विषय पर विवाद होता है तो संसद, समवर्ती सूची के विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 47 एवं वर्तमान में 52 विषय हैं) भी विधि बना सकती है अर्थात् दो राज्यों के मध्य विवाद की स्थिति में संसद की विधि राज्य विधानमण्डल पर प्रभावी होगी।

संविधान, संसद को राज्य सूची के विषयों पर (जिसमें मूल रूप से 66 एवं वर्तमान में 61 विषय हैं) विधि बनाने की शक्ति प्रदान करता है। ऐसा निम्नलिखित पांच असामान्य परिस्थितियों के अंतर्गत हो सकता है:

(i) जब राज्यसभा इसके लिए एक संकल्प पास करे।
(ii) जब राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो।
(iii) जब दो या अधिक राज्य संसद से ऐसा संयुक्त अनुरोध करें।
(iv) जब अंतर्राष्ट्रीय समझौते, संधि एवं समझौते के तहत ऐसा करना जरूरी हो।
(v) जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो।

राष्ट्रपति द्वारा जारी सभी अध्यादेशों को संसद द्वारा 6 सप्ताहों के भीतर स्वीकृति मिलनी चाहिए। यदि इस अवधि के भीतर अध्यादेश को संसद की स्वीकृति नहीं मिलती तो वह निष्प्रभावी हो जाता है।

संसद विधियों का खाका तैयार करती है और मूल विधि के ढांचे में ही विस्तृत नियम और विनियम बनाने के लिए कार्यपालिका को प्राधिकृत करती है। इसे प्रत्यायोजित विधान या कार्यपालिका विधान या अधीनस्थ विधान कहा जाता है। ऐसे नियमों और विनियमों को जांच के लिए संसद के समक्ष रखा जाता है।

2. कार्यकारी शक्तियां एवं कार्य

भारत के संविधान ने सरकार के संसदीय रूप की स्थापना की है। जिसमें कार्यकारिणी अपनी नीतियों एवं कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। इस तरह संसद कार्यकारिणी पर प्रश्नकाल, शून्यकाल, आंधे घंटे की चर्चा, अल्पावधि चर्चा, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव और अन्य चर्चाओं के जरिए नियंत्रण रखती है। यह अपनी समितियों जैसे सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति, अधीनस्थ विधान संबंधी समिति

याचिका समिति इत्यादि के माध्यम से कार्यपालिका के कार्यों का अधीक्षण करती है।

सामान्यत: मंत्री, संसद के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होते हैं, जबकि लोकसभा के प्रति विशेष रूप से। सामूहिक उत्तरदायित्व के एक भाग के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत जिम्मेदारी होती है। प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय के कार्यों के प्रति उत्तरदायी है। इसका मतलब है कि वे अपने पद पर तब तक बने रह सकते हैं जब तक उन्हें लोकसभा में बहुमत प्राप्त है। इसका अभिप्राय है कि मंत्रिपरिषद को अविश्वास प्रस्ताव पास कर हटाया जा सकता है। लोकसभा सरकार के प्रति विश्वास की कमी का प्रस्ताव निम्नलिखित तरीके से ला सकती है:

(i) राष्ट्रपति के उद्घाटन भाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव को पास न कर

(ii) धन विधेयक को अस्वीकार कर

(iii) निंदा प्रस्ताव या स्थगन प्रस्ताव पास कर

(iv) आवश्यक मुद्दे पर सरकार को हराकर

(v) कटौती प्रस्ताव पास कर

इसीलिये, यह कहा गया है कि संसद का पहला कार्य ऐसे समूह का चयन करना है, जो सरकार बनाये, उसे सत्ता में बने रहने के लिए तब तक सहायता प्रदान करना जब तक कि इसका विश्वास हो और विश्वास न हो तो उसे हटाकर, और अगले सामान्य चुनाव में इसे लोगों पर छोड़ देना।[23]

3. वित्तीय शक्तियां एवं कार्य

संसद की सहमति के बिना कार्यपालिका न ही किसी कर की उगाही कर सकती, न ही कोई कर लगा सकती और न ही किसी प्रकार का व्यय कर सकती है। इसीलिये बजट को स्वीकृति के लिये संसद के समक्ष रखा जाता है। बजट के माध्यम से संसद सरकार को आगामी वित्त वर्ष में आय एवं व्यय की अनुमति प्रदान करती है।

संसद, विभिन्न वित्तीय समितियों के माध्यम से सरकार के खर्चों की भी जांच करती है और उस पर नियंत्रण रखती है। इन समितियों में शामिल हैं—लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति एवं सार्वजनिक उपक्रमों संबंधी समिति। ये अवैध, अनियमित, अमान्य, अनुचित प्रयोगों एवं सार्वजनिक खर्चों के दुरुपयोग के मामलों को सामने लाती हैं।

इसीलिये, कार्यपालिका के वित्तीय मामलों पर संसद का नियंत्रण निम्न दो तरीकों से संभव हो पाता है:

(अ) बजटीय नियंत्रण, जो कि बजट के प्रभावी होने से पूर्व अनुदान मांगों के रूप में भी होता है। तथा

(ब) उत्तर बजटीय नियंत्रण, जो अनुदान मांगों को स्वीकृति दिये जाने के पश्चात तीन वित्तीय समितियों के माध्यम से स्थापित किया जाता है।

बजट, वार्षिकता के सिद्धांत पर आधारित होता है। जिसमें संसद, सरकार को एक वर्ष में व्यय करने के लिये धन उपलब्ध कराती है। यदि मंजूर किया धन, वर्ष के अंत तक व्यय नहीं होता है तो शेष धन का छास हो जाता है तथा भारत की संचित निधि में चला जाता है। इस प्रक्रिया को *छास का सिद्धांत* कहते हैं। इससे संसद का प्रभावी वित्तीय नियंत्रण स्थापित होता है तथा उसकी अनुमति के बिना कोई भी आरक्षित कोष नहीं बनाया जा सकता है। हालांकि, इस सिद्धांत के कारण वित्त वर्ष के अंत में व्यय का भारी कार्य उत्पन्न हो जाता है, जिसे *मार्च रश* कहते हैं।

4. सांविधानिक शक्तियां एवं कार्य

संसद में संविधान संशोधन शक्तियां निहित हैं तथा वह संविधान में किसी भी प्रावधान को जोड़कर, समाप्त करके या संशोधित करके इसमें संशोधन कर सकती है। संविधान के मुख्य भागों को विशेष बहुमत द्वारा संशोधित किया जा सकता है। संविधान की कुछ अन्य व्यवस्थाओं को साधारण बहुमत द्वारा संसद बदल सकती है। यह बहुमत संसद में उपलब्ध सदस्यों के बीच से तय होता है। कुछ व्यवस्थाएं ही ऐसी हैं, जिसे संसद विशेष बहुमत एवं करीब आधे राज्य विधानमंडलों (साधारण बहुमत) की सहमति के बाद ही संशोधित कर सकती है। कुल मिलाकर संसद संविधान को तीन प्रकार से संशोधित कर सकती है। कुछ ही संशोधन ऐसे हैं, जिन्हें संसद विशेष बहुमत एवं आधे से अधिक राज्यों की सहमति से ही संशोधित कर सकती है। हालांकि संविधान संशोधन की प्रक्रिया की शुरूआत पूर्णतया संसद पर निर्भर करती है न कि राज्य विधानमंडलों पर। इसका केवल एक अपवाद है, वह है कि कोई भी राज्य इस आशय का प्रस्ताव पारित कर सकता है कि अमुक राज्य में विधानपरिषद का गठन कर दिया जाये या उसे समाप्त कर दिया जाये। प्रस्ताव के आधार पर संसद, संविधान में आवश्यक संशोधन करती है। संसद तीन प्रकार से संविधान में संशोधन कर सकती है–

(i) साधारण बहुमत द्वारा

(ii) विशेष बहुमत द्वारा एवं

(iii) विशेष बहुमत द्वारा, लेकिन आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति के साथ।

संसद की यह शक्ति असीमित नहीं है, यह संविधान के 'मूल ढांचे' की शर्तानुसार है। दूसरे शब्दों में, संसद संविधान के 'मूल ढांचे' के अतिरिक्त किसी भी व्यवस्था को संशोधित कर सकती है। यह निर्णय उच्चतम न्यायालय ने *केशवानंद भारती मामले* (1973) एवं *मिनर्वा मिल मामले* (1980)[24] में दिया था।

5. न्यायिक शक्तियां एवं कार्य

संसद की न्यायिक शक्तियां और कार्य में निम्नलिखित शामिल हैं:

(अ) संविधान के उल्लंघन पर यह राष्ट्रपति को पदमुक्त कर सकती है।

(ब) यह उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है।

(स) यह उच्चतम न्यायालय (मुख्य न्यायाधीश सहित) एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को हटाने के लिए राष्ट्रपति से सिफारिश कर सकती है।

(द) यह अपने सदस्यों या बाहरी लोगों को इसकी अवमानना या विशेषाधिकारों के उल्लंघन के लिए दण्डित कर सकती है।

6. निर्वाचक शक्तियां एवं कार्य

संसद राष्ट्रपति के निर्वाचन में (राज्य विधानसभाओं के साथ) भाग लेती है और उपराष्ट्रपति को चुनती है। लोकसभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को चुनती है, जबकि राज्यसभा, उपसभापति का चयन करती है।

संसद को यह भी शक्ति है कि वह राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित नियम बना सकती है या उनमें संशोधन कर सकती है। वह संसद के दोनों सदनों एवं राज्य विधायिका के निर्वाचन से संबंधित नियम बना सकती है या उनमें संशोधन कर सकती है। इसी आधार पर संसद ने राष्ट्रपतीय एवं उपराष्ट्रपतीय निर्वाचन अधिनियम (1952), लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम (1950) एवं लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम (1951) आदि बनाए हैं।

7. अन्य शक्तियां एवं कार्य

संसद की अन्य कई शक्तियों एवं कार्यों में शामिल हैं:

(i) यह देश में विचार-विमर्श की सर्वोच्च इकाई है। यह राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर बहस करती है।

(ii) यह तीनों तरह के आपातकाल (राष्ट्रीय, राज्य और वित्त) की संस्तुति करती है।

(iii) यह संबंधित राज्य विधानसभा की स्वीकृति से विधान परिषद की समाप्ति या उसका गठन कर सकती है।

(iv) यह राज्यों के क्षेत्र, सीमा एवं नाम में परिवर्तन कर सकती है।

(v) यह उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के गठन एवं न्यायक्षेत्र को नियंत्रित करती है और दो या अधिक राज्यों के बीच समान न्यायालय की स्थापना कर सकती है।

संसदीय नियंत्रण की अप्रभाविता

भारत में सरकार एवं प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण, प्रायोगिक की तुलना में सैद्धांतिक ज्यादा है। वास्तव में, यह नियंत्रण उतना प्रभावी नहीं है, जितना होना चाहिये। इसके लिये कई कारक उत्तरदायी हैं:

(क) देश का प्रशासन इतना विशाल एवं जटिल है कि संसद को न तो इतना समय है और न ही इतनी विशेषज्ञता है कि वह प्रशासन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर सके।

(ख) अनुदान मांगों की तकनीकी प्रकृति के कारण संसद की वित्तीय नियंत्रण व्यवस्था ज्यादा प्रभावी नहीं बन पाती है।

(ग) विधायी नेतृत्व कार्यपालिका पर निर्भर होता है तथा कार्यपालिका की नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(घ) संसद का आकार काफी बड़ा है तथा इस पर नियंत्रण रखना काफी कठिन होता है।

(ड.) कार्यपालिका के साथ संसद में बहुमत का समर्थन होता है, फलत: उसकी प्रभावी आलोचना की संभावना समाप्त हो जाती है।

(च) लोक लेखा समिति जैसी वित्तीय संस्थायें कार्यपालिका द्वारा व्यय की गयी राशि की जांच बाद में करती हैं। इस प्रकार, यह प्रक्रिया पोस्टमार्टम जैसी हो जाती है।

(छ) गिलोटिन के बढ़े हुये आश्रय से वित्तीय नियंत्रण की संभावना कम हो जाती है।

(ज) प्रत्यायोजित विधान की अभिवृद्धि से विस्तृत विधि बनाने की संसद की शक्ति कम एवं कार्यपालिका की शक्ति बढ़ जाती है।

(झ) राष्ट्रपति द्वारा अत्यधिक अध्यादेशों के निर्माण से संसद की विधान बनाने की शक्ति कम हो जाती है।

(ठ) संसदीय नियंत्रण सामान्यतया ढीला, साधारण एवं अधिकांशतया प्रकृति में राजनीतिक होता है।

(त) संसद में सशक्त एवं स्थिर विपक्ष के अभाव एवं संसदीय व्यवहार एवं मर्यादाओं के अभाव में देश के प्रशासन पर विधायी नियंत्रण में ढीलापन आता है।

राज्यसभा की स्थिति

राज्यसभा की संवैधानिक स्थिति (लोकसभा की तुलना में) का तीन कोणों से अध्ययन किया जा सकता है:

1. जहां राज्यसभा, लोकसभा के बराबर हो।
2. जहां राज्यसभा, लोकसभा के बराबर नहीं हो।
3. जहां राज्यसभा की विशेष शक्तियां हों। जिनकी हिस्सेदारी लोकसभा के साथ नहीं होती।

लोकसभा के साथ समान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा के समान होती है:

1. सामान्य विधेयकों का पुर: स्थापन और उनको पारित करना।
2. संवैधानिक संशोधन विधेयकों का पुर: स्थापन और उनको पारित करना।
3. वित्तीय विधेयकों का पुर: स्थापन, जिनमें भारत की संचित निधि से व्यय शामिल होता है।
4. राष्ट्रपति का निर्वाचन एवं महाभियोग।
5. उपराष्ट्रपति का निर्वाचन और पद से हटाया जाना। राज्यसभा, उपराष्ट्रपति को अकेले हटाने की पहल कर सकती है, उसे राज्यसभा के विशेष बहुमत संकल्प को पारित कर और लोकसभा के सामान्य बहुमत की स्वीकृति द्वारा पद से हटाया जा सकता है।
6. राष्ट्रपति को उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं लेखा महानियंत्रक को हटाने की सिफारिश।
7. राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश की स्वीकृति।
8. राष्ट्रपति द्वारा घोषित तीनों प्रकार के आपातकालों की स्वीकृति।
9. प्रधानमंत्री सहित मंत्रियों का चयन। संविधान के अनुसार, प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्री दोनों में से किसी एक सदन के सदस्य होने चाहिये। हालांकि वे केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
10. संवैधानिक इकाइयों, जैसे—वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि की रिपोर्ट पर विचार करना।
11. उच्चतम न्यायालय एवं संघ लोक सेवा आयोग के न्याय क्षेत्र में विस्तार।

लोकसभा के साथ असमान स्थिति

निम्नलिखित मामलों में राज्यसभा की शक्तियां एवं स्थिति लोकसभा से असमान हैं:

1. धन विधेयक को सिर्फ लोकसभा में पुर: स्थगित किया जा सकता है, राज्यसभा में नहीं।
2. राज्यसभा, धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकती। उसे इस विधेयक को सिफारिश या बिना सिफारिश के 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना अनिवार्य होता है।
3. लोकसभा, राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। दोनों मामलों में इसे दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत माना जाएगा।
4. वित्त विधेयक अकेले अनुच्छेद 110 का मामला नहीं है। इसे सिर्फ लोकसभा में पुर:स्थापित किया जा सकता है लेकिन इसे पारित करने के मामलों में दोनों की शक्तियां समान हैं।
5. कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसे बताने की अंतिम शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।
6. दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है।

7. संयुक्त बैठक में लोकसभा ज्यादा संख्या से जीतती है सिवाय इसके कि सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों की संख्या दोनों सदनों में विपक्ष से कम हो।
8. राज्यसभा सिर्फ बजट पर चर्चा कर सकती है, उसके अनुदानों की मांगों पर मतदान नहीं करती।
9. राष्ट्रीय आपातकाल समाप्त करने का संकल्प लोकसभा द्वारा ही पारित कराया जा सकता है।
10. राज्यसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मंत्रिपरिषद को नहीं हटा सकती। ऐसा इसलिए क्योंकि मंत्रिपरिषद का सामूहिक उत्तरदायित्व लोकसभा के प्रति है। लेकिन राज्यसभा सरकार की नीतियों एवं कार्यों पर चर्चा और आलोचना कर सकती है।

राज्यसभा की विशेष शक्तियां

संघीय चरित्र होने के कारण राज्यसभा को दो विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं, जो लोकसभा के पास नहीं हैं:

1. यह संसद को राज्यसूची (अनुच्छेद 249) में से विधि बनाने हेतु अधिकृत कर सकती है।
2. यह संसद को केंद्र एवं राज्य दोनों के लिए नयी अखिल भारतीय सेवा के सृजन हेतु अधिकृत कर सकती है (अनुच्छेद 312)।

   उपरोक्त बिंदुओं का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था में राज्यसभा की स्थिति उतनी दुर्बल नहीं है कि जितनी की हाउस आफ लार्ड्स की ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था में है। दूसरी ओर राज्यसभा की स्थिति उतनी शक्तिशाली भी नहीं है, जितनी कि अमेरिकी संवैधानिक व्यवस्था में। वित्तीय मामलों एवं मंत्रिपरिषद के मंत्रियों के ऊपर नियंत्रण के अतिरिक्त, अन्य सभी मामलों में राज्यसभा की शक्तियां लोकसभा के बराबर ही हैं।

यद्यपि राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में कम शक्तियां दी गई हैं लेकिन इसकी उपयोगिता निम्नलिखित आधारों पर हैं:

1. यह लोकसभा द्वारा जल्दबाजी में बनाए गए, दोषपूर्ण, लापरवाही से और अविवेकपूर्ण विधान की समीक्षा और उस पर विचार के उपबंध के रूप में जांचोपाय है।
2. यह उन अनुभवी एवं पेशेगत लोगों को प्रतिनिधित्व देती है जो सीधे चुनाव का सामना नहीं कर सकते। राष्ट्रपति 12 ऐसे लोगों को राज्यसभा के लिए मनोनीत करता है।
3. यह केंद्र के अनावश्यक हस्तक्षेप के खिलाफ राज्यों के हितों की रक्षा करते हुए संघीय संतुलन को बरकरार रखती है।

संसदीय विशेषाधिकार

अर्थ

संसदीय विशेषाधिकार विशेष अधिकार, उन्मुक्तियां और छूटे हैं जो संसद के दोनों सदनों, इनकी समितियों और इनके सदस्यों को प्राप्त होते हैं। यह इनके कार्यों की स्वतंत्रता और प्रभाविता के लिए आवश्यक हैं। इन अधिकारों के बिना सदन न तो अपनी स्वायत्तत्ता, महानता तथा सम्मान को संभाल सकता है और न ही अपने सदस्यों को, किसी भी संसदीय उत्तरदायित्वों के निर्वहनों से सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

संविधान ने संसदीय अधिकार उन व्यक्तियों को भी दिए हैं जो संसद के सदनों या इसकी किसी भी समिति में बोलते तथा हिस्सा लेते हैं। इनमें भारत के महान्यायवादी तथा केंद्रीय मंत्री शामिल हैं।

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि संसदीय अधिकार राष्ट्रपति के लिए नहीं हैं जो संसद का एक अंतरिम भाग भी है।

वर्गीकरण

संसदीय विशेषाधिकारों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. वे अधिकार, जिन्हें संसद के दोनो सदन सामूहिक रूप से प्राप्त करते हैं, तथा
2. वे अधिकार, जिनका उपयोग सदस्य व्यक्तिगत रूप से करते हैं।

सामूहिक विशेषाधिकार

संसद के दोनों सदनों के संबंध में सामूहिक विशेषाधिकार निम्न हैं:

1. इसे अपनी रिपोर्ट, वाद-विवाद और कार्यवाही को प्रकाशित करने तथा अन्यों को इसे प्रकाशित न करने देने का भी अधिकार है। 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम ने, सदन की पूर्व अनुमति बिना संसद की कार्यवाही की सही रिपोर्ट के प्रकाशन की प्रेस की स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित किया किंतु यह सदन की गुप्त बैठक के मामले में लागू नहीं है।

2. यह अपनी कार्यवाही से अतिथियों को बाहर कर सकती है तथा कुछ आवश्यक मामलों पर विचार-विमर्श हेतु गुप्त बैठक कर सकती है।
3. यह अपनी कार्यवाही के संचालन, कार्य के प्रबंध तथा इन मामलों के निर्णय हेतु नियम बना सकती है।
4. यह सदस्यों के साथ-साथ बाहरी लोगों को इसके विशेषाधिकारों के हनन या सदन की अवमानना करने पर निंदित, चेतावनी या कारावास द्वारा दंड दे सकती है (सदस्यों के मामले में बर्खास्तगी या निष्कासन भी)।[25]
5. इसे किसी सदस्य की बंदी, अवरोध, अपराध सिद्धि, कारावास या मुक्ति संबंधी तत्कालिक सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।
6. यह जांच कर सकती है तथा गवाह की उपस्थिति तथा संबंधित पेपर तथा रिकॉर्ड के लिए आदेश दे सकती है।
7. न्यायालय, सदन या इसकी समिति की कार्यवाही की जांच के लिए निषेधित है।
8. सदन क्षेत्र में पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति (सदस्य या बाहरी व्यक्ति) बंदी नहीं बनाया जा सकता और न ही कोई कानूनी कार्यवाही (सिविल या आपराधिक) की जा सकती है।

व्यक्तिगत विशेषाधिकार

व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित विशेषाधिकार निम्न हैं:

1. उन्हें संसद की कार्यवाही के दौरान, कार्यवाही चलने से 40 दिन पूर्व तथा बंद होने के 40 दिन बाद तक बंदी नहीं बनाया जा सकता है। यह अधिकार केवल नागरिक मुकदमों में उपलब्ध है तथा आपराधिक तथा प्रतिबंधात्मक निषेध मामलों में नहीं।
2. उन्हें संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता है। कोई सदस्य संसद या इसकी समिति में दिए गए वक्तव्य या मत के लिए किसी भी न्यायालय की किसी भी कार्यवाही के लिए जिम्मेदार नहीं है। यह स्वतंत्रता, संविधान के प्रावधान तथा संसद की कार्यवाही के नियम एवं स्थायी आदेश के संचालन से संबंधित है।[26]
3. वे न्यायनिर्णयन सेवा से मुक्त हैं। वे संसद के सत्र में किसी न्यायालय में लंबित मुकदमे में प्रमाण प्रस्तुत करने या उपस्थिति होने के लिए मना कर सकते हैं।

विशेषाधिकारों का हनन एवं सदन की अवमानना

जब कोई व्यक्ति या प्राधिकारी किसी संसद सदस्य की व्यक्तिगत और संयुक्त क्षमता में इसके विशेषाधिकारों, अधिकारों और उन्मुक्तियों का अपमान या उन पर अक्रमण करता है तो इसे अपराध विशेषाधिकार हनन कहा जाता है और यह सदन द्वारा दण्डनीय है।[27]

किसी भी तरह का कृत्य या चूक, जो सदन, इसके सदस्यों या अधिकारियों के कार्य संपादन में बाधा डाले, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सदन की मर्यादा, शक्ति तथा सम्मान के विपरीत परिणाम दे की अवमानना माना जाएगा।[28]

यद्यपि दो अभिव्यक्तियों 'विशेषाधिकार हनन' और 'सदन की अवमानना' को एक-दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है तथापि इनके अर्थ भिन्न हैं। सामान्यत: विशेषाधिकार हनन सदन की अवमानना हो सकती है। इसी प्रकार सदन की अवमानना में विशेषाधिकार हनन शामिल हो सकता है। तथापि सदन की अवमानना के अर्थ का व्यापक प्रभाव है। विशेषाधिकार हनन के बिना भी सदन की अवमानना हो सकती है।[29] इसी प्रकार ऐसे कृत्य जो किसी विशिष्ट विशेषाधिकार का हनन नहीं हैं परन्तु वे सदन की मर्यादा और प्राधिकार के विरूद्ध सदन की अवमानना हो सकते हैं।[30] उदाहरण के लिए सदन के विधायी आदेश को न मानना विशेषाधिकार का हनन नहीं है, परन्तु सदन की अवमानना के लिए दण्डित किया जा सकता है।

विशेषाधिकारों के स्रोत

मूल रूप में, संविधान (अनुच्छेद 105) में दो विशेषाधिकार बताए गए हैं। ये हैं, संसद में भाषण देने की स्वतंत्रता तथा इसकी कार्यवाही के प्रकाशन का अधिकार। अन्य विशेषाधिकारों के संदर्भ में, ये ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कामन्स, इसकी समितियों तथा आरंभ तिथि (26 जनवरी 1950) से इसके सदस्यों की तरह समान हैं जब तक कि संसद द्वारा घोषित न हों। 1978 का 44वां संशोधन अधिनियम कहता है कि संसद के दोनों सदनों के अन्य विशेषाधिकार, इसकी

तालिका 22.5 *संसद में सीटों का बंटवारा*

क्रम संख्या	राज्य/केंद्रशासित प्रदेश	राज्यसभा में सीटों की संख्या	लोकसभा में सीटों की संख्या
(I)	**राज्य**		
1.	आंध्र प्रदेश	11	25
2.	अरुणाचल प्रदेश	1	2
3.	असम	7	14
4.	बिहार	16	40
5.	छत्तीसगढ़	5	11
6.	गोवा	1	2
7.	गुजरात	11	26
8.	हरियाणा	5	10
9.	हिमाचल प्रदेश	3	4
10.	जम्मू और कश्मीर	4	6
11.	झारखंड	6	14
12.	कर्नाटक	12	28
13.	केरल	9	20
14.	मध्य प्रदेश	11	29
15.	महाराष्ट्र	19	48
16.	मणिपुर	1	2
17.	मेघालय	1	2
18.	मिजोरम	1	1
19.	नागालैंड	1	1
20.	ओड़ीशा	10	21
21.	पंजाब	7	13
22.	राजस्थान	10	25
23.	सिक्किम	1	1
24.	तमिलनाडु	18	39
25.	तेलंगाना	7	17
26.	त्रिपुरा	1	2
27.	उत्तराखण्ड	3	5
28.	उत्तर प्रदेश	31	80
29.	पश्चिम बंगाल	16	42
(II)	**केंद्रशासित प्रदेश**		
1.	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	–	1
2.	चंडीगढ़	–	1
3.	दादरा और नागर हवेली	–	1
4.	दमन और दीव	–	1
5.	दिल्ली (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)	3	7
6.	लक्षद्वीप	–	1
7.	पुडुचेरी	1	1
(III)	**नामित सदस्य**	12	2
	कुल	**245**	**545**

तालिका 22.6 *लोकसभा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटें*

राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का नाम	2008 में परिसीमन से पहले संसद में स्थान			2008 के परिसीमन के बाद संसद में स्थान		
राज्य	कुल	अ.जा.के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित
1. आंध्र प्रदेश	42	6	2	25	4	1
2. अरुणाचल प्रदेश	2	–	–	2	–	–
3. असम	14	1	2	14	1	2
4. बिहार	11	2	4	11	1	4
5. छत्तीसगढ़	1	2	4	1	1	4
6. गोवा	2	–	–	10	2	–
7. गुजरात	26	2	4	26	2	4
8. हरियाणा	10	2	–	10	2	–
9. हिमाचल प्रदेश	4	1	–	4	1	–
10. जम्मू और कश्मीर	6	–	–	6	–	–
11. झारखंड	14	1	5	14	1	5
12. कर्नाटक	28	4	–	28	5	2
13. केरल	20	2	–	20	2	–
14. मध्य प्रदेश	29	4	5	2̣	4	6
15. महाराष्ट्र	48	3	4	48	5	4
16. मणिपुर	2	–	1	2	–	1
17. मेघालय	2	–	–	2	–	–
18. मिजोरम	1	–	1	1	–	1
19. नागालैंड	1	–	–	1	–	–
20. ओड़ीशा	21	3	5	21	3	5
21. पंजाब	13	3	–	13	4	–
22. राजस्थान	25	4	3	25	4	3
23. सिक्किम	1	–	–	1	–	–
24. तमिलनाडु	39	7	–	39	7	–
25. तेलगांना	–	–	–	17	3	2
26. त्रिपुरा	2	–	1	2	–	1
27. उत्तराखण्ड	5	–	–	5	1	–
28. उत्तर प्रदेश	80	18	–	80	17	–
29. पश्चिम बंगाल	42	8	2	42	10	2
केंद्र शासित प्रदेश						
1. अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह	1	–	–	1	–	–
2. चंडीगढ़	1	–	–	1	–	–
3. दादरा एवं नागर हवेली	1	–	1	1	–	1

राज्य/केंद्रशासित प्रदेश का नाम	2008 में परिसीमन से पहले संसद में स्थान			2008 के परिसीमन के बाद संसद में स्थान		
राज्य	कुल	अ.जा.के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित	कुल	अ.जा. के लिए आरक्षित	अ.ज.जा. के लिए आरक्षित
4. दमन एवं दीव	1	–	–	1	–	–
5. दिल्ली	7	1	–	7	1	–
6. लक्षद्वीप	1	–	1	1	–	1
7. पुडुचेरी	1	–	–	1	–	–
कुल	**243**	**79**	**41**	**543**	**84**	**47**

* परिसीमन से बाहर के राज्य

@ परिसीमन संशोधन अधिनियम, 2008 की धारा 10बी के अनुसार परिसीमन आयोग द्वारा जारी आदेश।

समितियों और सदस्यों को आरंभ होने की तिथि (20 जून, 1979) से ही प्राप्त हो गए। इसका अर्थ है कि अन्य विशेषाधिकार के संदर्भ में सभी स्थिति समान रहेगी। दूसरे शब्दों में, संशोधन सिर्फ मौखिक रूप से संशोधित होगा। इसे ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कामन्स के संदर्भ से बिना किसी परिवर्तन के लिया गया है।[31]

यह उल्लेखनीय है कि संसद ने अब तक विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के संबंध में कोई विशेष विधि नहीं बनाया है। वे 5 स्रोतों पर आधारित हैं:

1. संवैधानिक उपबंध,
2. संसद द्वारा निर्मित अनेक विधियां,
3. दोनों सदनों के नियम,
4. संसदीय परंपरा, और;
5. न्यायिक व्याख्या।

संसद की संप्रभुता

'संसद की संप्रभुता' का सिद्धांत ब्रिटिश संसद से संबंधित है। संप्रभुता का मतलब राज्य की सर्वोच्च शक्ति है। ग्रेट ब्रिटेन में सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है, इसके प्रभाव एवं न्यायक्षेत्र पर वहां कोई विधिक प्रतिबंध नहीं है।

अत: संसद की संप्रभुता (संसदीय सर्वोच्चता) ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। ब्रिटेन में सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है। ब्रिटिश न्यायवादी ए.वी. डायसी के मतानुसार इस सिद्धांत के तीन अनुप्रयोग हैं[32]:

1. संसद किसी कानून को संशोधित प्रतिस्थापित या विधि को निरसित कर सकती है। ब्रिटिश राजनीति विश्लेषक डी. लोल्मे कहते हैं, ''ब्रिटिश संसद एक महिला को पुरुष और पुरुष को महिला बनाने के अलावा सब कुछ कर सकती है।''
2. संसद संवैधानिक कानूनों को उसी प्रक्रिया की तरह बना सकती है जैसे साधारण कानून। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश संसद में सांविधिनिक प्रभाव एवं विधिक प्रभाव में कोई अंतर नहीं है।
3. संसदीय विधि को न्यायपालिका अवैध घोषित नहीं कर सकती जिससे वह असंवैधानिक हो जाए। दूसरे शब्दों में, ब्रिटेन में न्यायिक समीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

दूसरी तरफ भारतीय संसद को संप्रभु इकाई नहीं कहा जा सकता जैसा कि 'इसके प्रभाव व न्याय क्षेत्र में न्यायिक अवरोध हैं।' जो तत्व जो भारतीय संसद की संप्रभुता को सीमित करते हैं, वे हैं:

1. संविधान की लिखित प्रकृति

हमारे देश का संविधान मूलभूत विधि है। इसमें संघ सरकार के तीनों अंगों के लाभ क्षेत्र, प्रभाव एवं उनके आपस में संबंधों को परिभाषित किया गया है। इस तरह संविधान से इतर संसद के पास क्रियान्वयन को कुछ नहीं है। यही नहीं, कुछ संशोधनों के लिए आधे से अधिक राज्यों की संस्तुति भी जरूरी होती है। ब्रिटेन में न तो संविधान लिखित में है और न ही वहां कोई मूलभूत विधि है।

तालिका 22.7 *लोकसभा की अवधियां (प्रथम लोकसभा से वर्तमान लोकसभा तक)*

लोकसभा	अवधि	विशेष
पहली	1952–1957	अपना कार्यकाल पूरा करने के 38 दिन पहले विघटित हो गयी।
दूसरी	1957–1962	अपना कार्यकाल पूरा करने के 40 दिन पहले विघटित हो गयी।
तीसरी	1962–1967	अपना कार्यकाल पूरा करने के 44 दिन पहले विघटित हो गयी।
चौथी	1967–1970	अपने कार्यकाल से 1 वर्ष एवं 79 दिन पहले विघटित हो गयी।
पांचवीं	1971–1977	इसका कार्यकाल 1–1 वर्ष करके दो बार बढ़ाया गया। हालांकि, लोकसभा पांच वर्ष, 10 माह एवं 6 दिन की अवधि के बाद विघटित हो गयी।
छठवीं	1977–1979	दो वर्ष चार माह एवं 28 दिन में विघटित हो गयी।
सातवीं	1980–1984	अपना कार्यकाल पूरा करने के 20 दिन पहले विघटित हो गयी।
आठवीं	1985–1989	अपना कार्यकाल पूरा करने के 48 दिन पहले विघटित हो गयी।
नौवीं	1989–1991	एक वर्ष, दो माह एवं 25 दिन बाद विघटित हो गयी।
दसवीं	1991–1996	–।
ग्यारहवीं	1996–1997	एक वर्ष, दो माह एवं 25 दिन बाद विघटित हो गयी।
बारहवीं	1998–1999	एक वर्ष, एक माह एवं 4 दिन बाद विघटित हो गयी।
तेरहवीं	1999–2004	अपने कार्यकाल से 253 दिन पहले विघटित हो गयी।
चौदहवीं	2004–2009	–
पंद्रहवीं	2009–2014	–
सोलहवीं	2014–अब तक	–

2. सरकार की संघीय व्यवस्था

भारत में शासन की फेडरल (संघीय) प्रणाली है जिसमें संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का सांविधानिक विभाजन है, दोनों स्वयं को प्राप्त विषयों पर क्रियान्वयन करते हैं। अत: संसद की विधि निर्माण की शक्ति केवल संघीय सूची और समवर्ती सूची के विषयों तक सीमित है। लेकिन इस शक्ति को राज्यसूची में विस्तारित नहीं किया जा सकता (सिवाए पांच असाधारण परिस्थितियों के, यह भी अल्प समय के लिए)। दूसरी तरफ, ब्रिटेन में सरकार की एकात्मक व्यवस्था है। इस तरह सारी शक्ति केंद्र में निहित होती है।

3. न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था

स्वतंत्र न्यायपालिका के साथ न्यायिक समीक्षा की शक्ति हमारी संसद की सर्वोच्चता पर रोक लगाती है। उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों संसद द्वारा प्रभावी विधि को असंवैधानिक घोषित कर सकते हैं यदि वे संविधान से किसी उपबंध का उल्लंघन करते हों। दूसरी तरफ, ब्रिटेन में न्यायिक समीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। ब्रिटिश न्यायालय, संसदीय विधि को बिना उसकी संवैधानिकता, वैधता या उचित कारण जाने विशेष मामलों में लागू कर सकता है।

4. मूल अधिकार

संविधान के भाग तीन के अंतर्गत न्यायोचित मूल अधिकारों की संहिता को शामिल कर संसद के प्राधिकार को समिति किया गया है। अनुच्छेद 13 राज्य की किसी भी ऐसी विधि को बनाने से प्रतिबंधित करता है जो मूल अधिकार के किसी भाग या इसे पूर्ण रूप में निरसन करे। इस तरह एक संसदीय विधि जो मूल अधिकारों का हनन करे, उसे अवैध माना जाएगा। दूसरी तरफ, ब्रिटेन के संविधान में न्यायोचित मूल अधिकारों की कोई अलग संहिता नहीं

तालिका 22.8 *लोकसभा के अध्यक्ष (प्रथम लोकसभा से वर्तमान लोकसभा तक)*

लोकसभा	नाम	कार्यकाल
पहली	1. गणेश वासुदेव मावलंकर	1952–1956 (निधन)
	2. एम. ए. आयंगर	1956–1957
दूसरी	एम. ए. आयंगर	1957–1962
तीसरी	हुकुम सिंह	1962–1967
चौथी	1. नीलम संजीव रेड्डी	1967–1969 (त्यागपत्र)
	2. डॉ. गुरदयाल सिंह ढिल्लो	1969–1971
पांचवीं	1. डॉ. गुरदयाल सिंह ढिल्लो	1971–1975 (त्यागपत्र)
	2. बलीराम भगत	1976–1977
छठी	1. नीलम संजीव रेड्डी	1977 –1977 (त्यागपत्र)
	2. के. डी. हेगड़े	1977–1980
सातवीं	डॉ. बलराम जाखड़	1980–1985
आठवीं	डॉ. बलराम जाखड़	1985–1989
नौवीं	रवि राय	1989–1991
दसवीं	शिवराज वी. पाटिल	1991–1996
ग्यारहवीं	पी. ए. संगमा	1996–1998
बारहवीं	जी. एम. सी. बालयोगी	1998–1999
तेरहवीं	1. जी. एम. सी. बालयोगी	1999–2002 (निधन)
	2. मनोहर जोशी	2002–2004
चौदहवीं	सोमनाथ चटर्जी	2004–2009
पंद्रहवीं	मीरा कुमार	2009–2014
सोलहवीं	सुमित्रा महाजन	2014–अब तक

है। ब्रिटिश संसद में इस तरह का भी कोई कानून नहीं बनता जो नागरिकों के मूल अधिकारों पर हो। इसका मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश नागरिकों को अधिकार ही प्राप्त नहीं हैं। यद्यपि वहां अधिकारों का गारंटी चार्टर नहीं है, लेकिन ब्रिटेन में विधि का नियम होने के कारण अधिकतम स्वतंत्रता है।

तथापि हमारी संसद की संगठनात्मक एवं नामवली पद्धति उसी तरह है जैसे ब्रिटिश संसद परन्तु दोनों में काफी अंतर है। भारतीय संसद ब्रिटिश संसद की संप्रभु इकाई होने के अर्थ में एक संप्रभु इकाई नहीं है। ब्रिटिश संसद के विपरीत भारतीय संसद का प्राधिकार परिभाषित, सीमित एवं प्रतिबंधित है।

इस परिपेक्ष्य में, भारतीय संसद अमेरिकी विधायिका (कांग्रेस के रूप में जाना जाता है) के समान है। अमेरिका में भी, कांग्रेस की संप्रभुता वैधानिक रूप से संविधान के लिखित शब्दों, सरकार की संघीय व्यवस्था, न्यायिक समीक्षा तथा अधिकार के विधेयकों द्वारा प्रतिबंधित है।

तालिका 22.9 *संसद से संबंधित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद	विषयवस्तु
	सामान्य
79	संसद का गठन
80	राज्यसभा का संघटन
81	लोकसभा का संघटन
82	प्रत्येक जनगणना के पश्चात् पुनर्समायोजन
83	संसद के सदनों की अवधि
84	संसद की सदस्यता के लिए योग्यता
85	संसद के सत्र, सत्रावसान एवं विघटन (भंग)
86	राष्ट्रपति का सदनों को संबोधित करने तथा संदेश देने का अधिकार
87	राष्ट्रपति का विशेष संबोधन
88	सदनों के प्रति मंत्रियों एवं अटार्नी जनरल के अधिकार
	संसद के पदाधिकारी गण
89	राज्यसभा के सभापति तथा उपसभापति
90	राज्यसभा के उपसभापति पद की रिक्ति, त्यागपत्र तथा विमुक्ति
91	सभापति के कर्तव्यों के निर्वहन अथवा सभापति के रूप में कार्य करने की उपसभापति की शक्ति
92	सभापति अथवा उपसभापति का सदन की अध्यक्षता से विरत रहना, जबकि उनकी विमुक्ति संबंधी कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो
93	लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष
94	लोकसभाध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष पद की रिक्ति, त्यागपत्र तथा विमुक्ति
95	लोकसभा उपाध्यक्ष अथवा किसी अन्य व्यक्ति का लोकसभा अध्यक्ष के कर्तव्यों का निर्वहन अथवा लोकसभा अध्यक्ष के रूप में कार्य करने की शक्ति
96	लोकसभा अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का सदन की अध्यक्षता से विरत रहना, जबकि उनकी विमुक्ति संबंधी कोई प्रस्ताव विचाराधीन हो
97	सभापति एवं उपसभापति तथा लोकसभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन एवं भत्ते
98	संसद सचिवालय
	कार्यवाही का संचालन
99	सदस्यों द्वारा शपथ ग्रहण
100	दोनों सदनों में मतदान, रिक्तियों तथा कोरम की पूर्ति के बिना भी सदनों का कार्य करने का अधिकार
	सदस्यों की अयोग्यता
101	सीटों की रिक्ति
102	सदस्यता से अयोग्य ठहरना
103	सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित प्रश्नों पर निर्णय
104	अनुच्छेद 99 के अंतर्गत शपथ ग्रहण करने के पहले स्थान ग्रहण करने तथा मतदान देने पर दंड अथवा जब योग्यता नहीं हो अथवा जब अयोग्य ठहराया गया हो।

	संसद तथा इसके सदस्यों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार तथा प्रतिरक्षा
105	संसद के सदनों तथा इसके सदस्यों एवं समितियों की शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार आदि
106	सदस्यों के वेतन एवं भत्ते
	विधायी प्रक्रिया
107	विधेयकों की प्रस्तुति एवं उनको पारित करने संबंधी प्रावधान
108	कतिपय मामलों में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक
109	मुद्रा विधेयकों के मामले में विशेष प्रक्रिया
110	मुद्रा विधेयक की परिभाषा
111	विधेयकों की स्वीकृति
	वित्तीय मामलों में प्रक्रिया
112	वार्षिक वित्तीय विवरण
113	संसद में प्राक्कलनों से संबंधित प्रक्रिया
114	विनियोजन विधेयक
115	पूरक, अतिरिक्त तथा अतिरेक अनुदान
116	लेखा पर मतदान, ऋण एवं असाधारण अनुदानों पर मतदान
117	वित्तीय विधेयकों संबंधी विशेष प्रावधान
	सामान्य प्रक्रिया
118	प्रक्रिया संबंधी नियम
119	संसद में वित्तीय कार्यवाहियों से संबंधित विनियमन
120	संसद में उपयोग की जाने वाली भाषा
121	संसद में चर्चा पर प्रतिबंध
122	संसद की कार्यवाहियों के बारे में न्यायालय पूछताछ नहीं कर सकता।
	राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ
123	संसद के अवकाश काल में राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति।

संदर्भ सूची

1. वेस्टमिंस्टर लंदन में एक स्थान है, जहां ब्रिटिश संसद स्थित है। इसे ब्रिटिश संसद के चिन्ह रूप में अक्सर इस्तेमाल किया जाता है।
2. इस पाठ में देखें तालिका 22.5।
3. एक आंग्ल-भारतीय वह व्यक्ति है, जिसके पिता या कोई जिसका अन्य पुरुष प्रपिता यूरोपीय मूल का हो का हो और वह भारतीय क्षेत्र में रहता हो, वहां पैदा हुआ हो और जो वहां अस्थायी उद्देश के तहत न रह रहा हो।
4. देखें पाठ के अंत में तालिका 22.5।
5. इसका तात्पर्य है कि राज्य या केन्द्र शासित क्षेत्र में लोकसभा के लिए आरक्षित सीट। इन जातियों या जनजातियों के लिए उसी अनुपात में सीटों की संख्या होती है। यह अनुपात इनकी कुल जनसंख्या के आधार पर निर्धारित होता है।
6. इसके तहत राष्ट्रपति ने राज्यसभा (सदस्यों का कार्यकाल) आदेश 1952 पारित किया।

7. पांचवीं लोकसभा का कार्यकाल जो 18 मार्च, 1976 में समाप्त होना था उसे एक साल 18 मार्च, 1977 तक के लिए लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976 के तहत बढ़ाया गया। इसके बाद फिर इसे एक वर्ष 18 मार्च, 1978 तक के लिए लोक सभा (अवधि विस्तार) संशोधन अधिनियम 1976 के तहत बढ़ाया गया। हालांकि सदन को 18 जनवरी, 1977 को पांच वर्ष, 10 माह और 6 दिन के लिए बढ़ाकर विघटित कर दिया गया।
8. केंद्रीय या राज्य सरकार का मंत्री लाभ के पद पर नहीं माना जा सकता है। संसद यह भी घोषणा कर सकती है कि कोई विशेष पद लाभ वाला नहीं है और इस पर आसीन व्यक्ति संसद का सदस्य बना रह सकता है।
9. समानांतर सदस्यता प्रतिषेध नियम (1950) के तहत राष्ट्रपति द्वारा बनाया गया।
9a. वे संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम, 1953 (यथा संशोधित) की धारा 3
9b. वही
9c. वही
9d. वही
9e. संसद के अधिकारियों का वेतन एवं भत्ता अधिनियम, 1953 (यथा संशोधित) की धारा 5
9f. वही
10. *किहोता होल्लोहन* बनाम *जाचिल्हू* (1992)।
11. इस संदर्भ में वी.वी. गिरि ने महसूस किया, ''इस तरह के विस्तारित प्राधिकरण के पद पर रहने वाले को अपनी शक्तियों का इस्तेमाल निष्पक्ष होकर करना होगा। इसलिए निष्पक्षता अध्यक्ष कार्यालय की अवभिाज्य शर्त है, वह सभा की शक्तियों और विशेषाधिकारों का संरक्षक है और न कि उनका, जिनके सहयोग से वह चुनकर आया है। उसके लिए अल्पसंख्यक दलों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का संरक्षण प्रदान कर उनका विश्वास प्राप्त किए बिना सदन की व्यवस्था बनाए रखना संभव नहीं है।'' (पावर ऑफ प्रेसाइडिंग आफिसर इन इंडियन लेजिस्लेचर: संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन के पत्र में, नई दिल्ली खंड-दो संख्या 4 अक्तूबर-दिसंबर 1968, पृष्ठ 22)।
12. उदाहरण के लिए 13वीं लोकसभा में श्री इंद्रजीत गुप्ता को 20 अक्तूबर, 1999 को सामायिक अध्यक्ष नियुक्त किया गया और वे इस पद पर 22 अक्तूबर, 1999 तक, जब तक कि नए अध्यक्ष श्री जी.एम.जी. बालयोगी नहीं बन गए, बने रहे।
13. संविधान के अनुच्छेद 107 (3) के तहत संसद में लंबित विधेयक को लोक सभा के सत्रावसान के कारण समाप्त नहीं किया जा सकता। लोकसभा के नियम 336 के तहत एक प्रस्ताव, संकल्प एवं एक संशोधन जो सदन में लंबित हो, को सत्रावसान के कारण खत्म नहीं किया जा सकता।
14. सुभाष सी. कश्यप: *अवर पार्लियामेंट,* नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 135-136।
15. जे.सी. जौहरी: *इंडियन गवर्नमेंट एंड पालिटिक्स,* विशाल, खंड-दो तेरहवां संस्करण, 2001, पृष्ठ-360।
16. सुभाष सी. कश्यप: *अवर पार्लियामेंट,* नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 139-141।
17. वही, पृष्ठ-139।
18. लोकसभा के नियम 64 के अनुसार, अध्यक्ष से इस संबंध में अनुरोध किया जा सकता है ताकि विधेयक गजट में प्रकाशित हो सके। यद्यपि विधेयक को पुर:स्थापित करने के लिए अनुमति हेतु कोई प्रस्ताव न किया गया हो। यदि इसे शामिल किया जाता है तो इसे दोबारा प्रकाशित करना जरूरी नहीं है।
19. विभिन्न तरह के वीटो के लिए देखें अध्याय-17 के तहत 'राष्ट्रपति की वीटो शक्ति'।

20. राज्यसभा द्वारा किए गए संशोधन से लोकसभा सहमत नहीं हुई। 6 मई, 1961 को एक संयुक्त बैठक हुई।
21. विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया, लेकिन राज्यसभा द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। 16 मई, 1978 को एक संयुक्त बैठक आयोजित की गई।
22. विधेयक को लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया, लेकिन राज्यसभा द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया। 26 मार्च, 2002 को संयुक्त बैठक बुलाई गई। विधेयक तब पास हुआ जब 425 सदस्यों ने इसके पक्ष में मत दिया और 296 ने इसके खिलाफ मत डाला।
23. एन.एन. माल्या: *इंडियन पार्लियामेंट,* पृष्ठ 38।
24. *केशवानंद भारती* बनाम *केरल राज्य* (1973), *मिनर्वा मिल्स* बनाम *भारत संघ* (1980)।
25. 1977 में छठी लोकसभा ने श्रीमती इंदिरा गांधी की सदस्यता को खत्म कर दिया और सदन की अवमानना के लिए उन्हें एक हफ्ते की जेल हुई, यह तब हुआ जब वह प्रधानमंत्री थीं। लेकिन सातवीं लोकसभा ने इस संकल्प को निरस्त कर दिया और यह कहा गया कि यह कार्यवाही राजनीतिक थी। 1980 में पूर्व मंत्री के.के. तिवारी की राज्यसभा द्वारा भर्त्सना की गई।
26. संविधान का अनुच्छेद 121 कहता है कि उच्चतम या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कार्य के संबंध में संसद में बहस नहीं होगी, यह बहस सिर्फ किसी न्यायाधीश को हटाने हेतु राष्ट्रपति को संबोधित प्रस्ताव के जरिये ही हो सकती है लोकसभा के नियम 349 से 350 के तहत किसी सदस्य द्वारा असंसदीय भाषा या व्यवहार प्रतिबंधित है।
27. कौल एवं शकधर: *प्रैक्टिस एंड प्रोसीजर आफ पार्लियामेंट,* प्रथम संस्करण, पृष्ठ 157।
28. थॉमस एरिक्सन में: *पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस,* 15वां संस्करण, पृष्ठ 109।
29. सुभाष सी कश्यप: *अवर पार्लियामेंट,* नेशनल बुक ट्रस्ट, 1999 संस्करण, पृष्ठ 241।
30. थॉमस एरिक्सन मे: *पार्लियामेंटरी प्रैक्टिस,* 15वां संस्करण, पृष्ठ 43।
31. तत्कालीन विधि मंत्री ने ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स से संदर्भ लेने के निम्नलिखित कारण बताए, ''कि मूल उपबंध में ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स का आश्रय लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। अब भारत जैसा कोई गर्वित अपने पवित्र सांविधानिक दस्तावेज में किसी विदेशी संस्थान से संदर्भ लेने से बचना ही चाहेगा। इसलिए या मौखिक परिवर्तन इसलिए शामिल किया गया है ताकि किसी विदेशी संस्था के संदर्भ न हों।''
32. ए.वी. डायसी: *इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ द लॉ ऑफ द कांस्टीट्यूशन,* मैकमिलन, 1965, संस्करण, पृष्ठ 39–40।